प्रथम अध्याय

** प्रगतिवाद चिंतन अनुचिंतन **

प्रथम अध्याय

प्रगतिवादी चिंतन - अनुचिंतन

प्रगतिवाद - शब्दप्रयोग - विवेचन :-

साहित्य के क्षेत्रमें किसी भी वाद का उत्पन्न होना, उस समय की घटनाएँ और परिस्थितियोंपर निर्भर करता हैं। हिन्दी साहित्य के इतिहास पर नजर डालनेसे पता चलता हैंकि, समय के साथ-साथ साहित्य में भी परिवर्तन होता हैं। हिंदी साहित्य में प्रगतिवादी का आगमन 1935 में हुआ। इस कार्यमें अनेक विदेशी आंदोलनों और विचारधाराओं का भी सहयोग रहा हैं। भारत में समाजवादी विचारधारा का प्रभाव राजनीतिक क्षेत्रमें निरंतर बढ रहा था। हिंदी के उदीयमान विचारकों, लेखकों, कवियों आदि ने साहित्य के माध्यमसे इस विचारधारा का अंकन करना आरंभ कर दिया था।

साहित्यकारों की भावनाएँ जनवादी तो थी, परंतु वे नहीं जानते थे कि अत्याचारों से पीडित जनता को कैसी मुक्ति दिला दी जाय। एक ऐसे समाज की स्थापना करें जिसमें शोषण और अत्याचार का निशान तक न रहें। तभी प्रगतिवाद ने एक सशक्त, वैज्ञानिक सुस्पष्ट व्यावहारिक विचारधारा के रुपमें सामने आकर जनवादी कलाकारों की इस दुविधा को दूर कर उन्हें एक निश्चित पथपर आगे बढ़ने की प्रेरणा दी।

छायावाद अपने वैयक्तिक दृष्टिकोण के कारण पीछे रह गया। 'छायावादी कविता की भूमिका जीवन के लिए उपयोगहीन साबित हो रही थी। छायावादी कविता का अति अवस्थातक पहुँचा हुआ माधुर्य और सौंदर्य नये युग की भूमिकामें लोगोंको लुभा सकनेमें सर्वथा असमर्थ और अशक्त साबित हो रहा था।' 1 सुमित्रानंदन पंत के मतानुसार - 'छायावाद के शून्य सुक्ष्म आकाशमें अति काल्पनिक उडान भरनेवाली अथवा रहस्यके निर्जन अदृश्य शिखरपर विराम करनेवाली कल्पना, जनजीवन का सही चित्र अंकित करने के लिए एक ठोस जनपूर्ण धरती आवश्यकता थी और नए युगकी भी यही माँग थी।' 2

प्रगति - प्र+गति शब्दसे 'प्रगति' शब्द उत्पन्न हुआ जिसका शाब्दिक अर्थ हैं - प्रकृष्ट गति अर्थात उन्नती हैं। लाक्षणिक दृष्टिसे यह कहा जा सकता हैंकि प्राचीन मान्यताओं के विरुध्द सम-सामयिक विचारधारा, साहित्यिक आंदोलन ही प्रगतिवाद है। यह वाद समाजवादी चेतना की प्रति-छाया बनकर उभरा।

---

1. डॉ. अजितसिंह - प्रगतिवादी काव्य : उद्भव और विकास - पृष्ठ 65
2. उमेशशास्त्री - हिन्दी साहित्य की प्रमुख प्रवृतियाँ - पृष्ठ 21।

प्रगतिवादी विचारधारा के प्रसार के कारण समुचे विश्वमें परिवर्तनकी लहर आई और केवल आंतरिक सौंदर्य को व्यक्त करनेवाली कविता का खुला विरोध होने लगा। युरोप के बुध्दिजीवियोंने प्रगतिशील लेखक संघ का निर्माण करके ऐ नये आंदोलन को जन्म दिया।

प्रगतिवाद तथा प्रगतिशील विचारधारा की परिभाषा इसप्रकार -

कार्लमार्क्स के अनुसार - 'प्रत्येक ऐतिहासिक युग की आर्थिक उत्पादन प्रणाली और उससे उत्पन्न होनेवाली समाज व्यवस्था ही उस युग के राजनैतिक और बौध्दिक इतिहास का आधार हैं। इसलिए आज तक का सारा इतिहास वर्ग संघर्षो का सामाजिक विकास की विविध अवस्थाओंमें शोषक और शोषित तथा शासक और शासित वर्गो के संघर्षो का इतिहास हैं।' 1

साम्यवादी समाज के संबंधमें लेनिन के मतानुसार - 'हमारा सोवियत समाजवादी प्रजातंत्र, आंतरराष्ट्रीय समाजवाद के दीपस्तंभ की तरह और सारी मेहनतकश जनता के लिए उदाहरण के तौर पर दृढतापूर्वक खड़ा रहेगा।' 2

डॉ. रामविलास शर्मा के मतानुसार - 'प्रगतिशील साहित्य से मतलब उस साहित्य से है, जो समाज को आगे बढाता हैं, मनुष्य के विकासमें सहायक होता है' 3

डॉ. शिवमंगल सिंह के मतानुसार - 'मैं प्रगति की ओर और प्रवाह के प्रति प्रतिबध्द हूँ। किसी विशेष चिंतनधारा या वाद से न तो अपने को जोड़ता हूँ। यदि प्रवृत्ति की दृष्टि से देखा जाय तो मैं मूलतः रोमॅंटिक हूँ, अपने विद्रोही स्वतंत्र और रागात्मक अर्थोंमें आगे मुझे प्रगतिवादी कवि कहा गया।' 4

प्रगतिवाद : मार्क्सवादी विचारधारा का हिंदी रुपांतरण -

प्रगतिवाद हिंदीमें मार्क्सवाद की साहित्यिक अभिव्यक्ति या साहित्य संबंधी मार्क्सवादी दृष्टिकोण का नाम हैं। इसी विषयपर हिंदी के सभी समीक्षकों का एक मत हैं।

'साम्यवादी आंदोलनोंने प्रगतिवाद को जन्म दिया। विश्व के निम्न वर्ग के लोग, श्रमिक, मजदूरों की एकता का नारा देनेवाले कार्लमार्क्स और एंगेल्स ने प्रगतिवादी आंदोलन खड़ा किया। 19 वी

---

1. रामप्रसाद त्रिवेदी - प्रगतिवादी समीक्षा - पृष्ठ 64
2. रामप्रसाद त्रिवेदी - प्रगतिवादी समीक्षा - पृष्ठ 65
3. रविंद्रनाथ मिश्र - डॉ.शिवमंगल सिंह सुमन समीक्षात्मक अध्ययन - पृष्ठ 20
4. डॉ. शिवमंगल सिंह सुमन - जीवन के गान - पृष्ठ 22

शती के मध्यमें जर्मनी के एक निर्वासित यहुदी ने मानवतावाद से प्रभावित होकर सर्वहारा वर्ग के शोषण की समाप्ति के लिए आवाज उठायी। सामाजिक विषमता का निराकरण करनेवाले इस आंदोलन की गति काल के साथ व्यापक होती गयी।' 1 मार्क्स के पूर्व विचारकोंने भी नवयुग के सपने देखे थे। लेनिन, मार्क्स ने उसे साकार करके दिखाया, उसे साकार की वैज्ञानिक प्रक्रिया दी। इसी मानवतावादी विचारधारा से पूँजीवाद को गहन धक्का लगा, लेकिन श्रमिकों, मजदूरों को अपनी राह मिल गई।

प्रगतिवादी विचारधारा को विदेशोंमें इतना प्रचार हुआ कि साम्यवाद को न माननेवाले भी इससे प्रभावित हुए बिना नहीं रहे। मार्क्सवादी विचारधारा के अनुसार और एंगेल्स द्वारा बनाये कम्युनिस्ट लीग के नियमों का प्रथम भाग था - 'पूँजीपति वर्गका तख्ता पलटना और श्रमिकों का शासन लाना, वर्गभेद-वर्णभेद पर आधारीत समाज को नष्ट करके वर्ग-वर्णहीन समाज की स्थापना करना।' 2

कम्युनिस्ट लीग में कार्य करने के अतिरिक्त मार्क्स और एंगेल्सने ब्रुसेल्समें जनवादी सभा स्थापित करनेमें सहभाग दिया। इन दोनोंने लीग की द्वितीय काँग्रेस की तैयारी को महत्व दिया। 1844 के नवंबर, दिसंबरमें लंदन के काँग्रेसने लीग के नियमों को अंतिम पुष्टि की और भावी कार्यक्रम पर विचार किया और मार्क्स और एंगेल्स पर घोषणापत्र तैयार करने का भार सौंपा गया। ये घोषणापत्र 1848 के प्रारंभमें प्रकाशित हुआ।

इस घोषणापत्र के नुसार साम्यवाद आर्थिक सिध्दांतपर आधारित न होकर द्वंद्वात्मक, भौतिकवाद, मजदूरों की आंतरराष्ट्रीय संघटना बनाने इसी विचारों को महत्व दिया गया। मार्क्स ने इंग्लैंड के मजदूरों के आंदोलनों का लक्षपूर्वक अभ्यास किया और एंगेल्स के साथ मिलकर इस आंदोलन को समाजवादी बनानेमें वामपंथी नेता जार्ज हार्नी और ए. जोन्स की सहायता की। उसने भारतमें इंग्लैंड की उस अन्याय और अत्याचारी सत्ता की निंदा की जो भारतीय लोगोंमें धनहीनता और रोटी की समस्या उत्पन्न करती थी।

इसके संदर्भमें कार्ल मार्क्सने भारतमें ब्रिटिश राज और भारतमें ब्रिटिश राज के भावी परिणाम' नामक लेख लिखा।

मार्क्स के बाद उसके शिष्योंने उसके आंदोलन कार्य का विकास किया। मार्क्सवादी आदर्शोंको व्यावहारिक धरातलपर लाने का श्रेय लेनिन को हैं। मार्क्सवादी आदर्शों के अनुरुप सोवियत समाज को ढालना यहीं लेनिन का एकमात्र लक्ष्य था। 1917 में रुसमें सफल क्रांति हुई और मार्क्सवाद का प्रभाव

---

1. डॉ. भक्तराम शर्मा - मार्क्सवाद और हिन्दी कविता - पृष्ठ 9
2. रामप्रसाद त्रिवेदी - प्रगतिवादी समीक्षा - पृष्ठ 21

विश्वमें तीव्र गति से बढ़ गया। रुस की अभूतपूर्व नयी सामाजिक व्यवस्था के रुपमें विश्व के सर्वहारा वर्ग का स्वप्न साकार हुआ। 'अक्तुबर क्रांति के बाद बोल्शेविक दल ने अपना नाम साम्यवादी दल रखा और सन 1919 में उसने एक दूसरा साम्यवादी घोषणापत्र प्रकशित किया, जिसके आधारपर एक नये आंतरराष्ट्रीय साम्यवादी आंदोलन का सूत्रपात किया।' 1

लेनिन की मृत्यु के पश्चात स्तालिन ने साम्यवादी रुस का नेतृत्व किया। चीनमें माओत्से तुंगने साम्यवादी क्रांति का सफल संगठन किया और 1949 में चीन की जनवादी सरकार स्थापित हुई। दूसरे महायुध्द के मध्यमें और उसके बाद सोवियत सेनाओं की सफलता तथा अन्य आंतरराष्ट्रीय परिस्थिति के कारण पूरे विश्वमें साम्यवाद का प्रभाव पडा।

प्रगतिवादी चिंतन (ख) मार्क्सपूर्व चिंतक :

पश्चिमी देशोंमें मार्क्सवादी तथा समाजवादी आदर्शोंपर आधारित कला चिंतन और उसकी साहित्यिक पार्श्वभूमिपर जब हम दृष्टिपात करते हैं तो पाश्चात्य चिंतन की कई कोटियाँ हमारे सामने आ जाती हैं। (क) प्रथम श्रेणीमें समीक्षकों तथा विचारकों का समावेश है जो मार्क्स से पूर्व अथवा उनके समयमें विभिन्न वैचारिक स्त्रोतों से प्रेरणा लेकर साहित्य के सामाजिक तथा यथार्थवादी पक्षपर विशेष बल दिया। इसमें सेन्ट बेव, टेन, बेलिंस्की, और भौतिकवादी विचारधारा से प्रभावित चार्निशेवस्की।

पाश्चात्य आलोचना के क्षेत्रमें यथार्थवादी प्रवृत्तियों के विकास के संदर्भमें फ्रांस के प्रसिध्द आलोचक संट बेव और टेन का नाम महत्त्वपूर्ण है। अपने युग के वैज्ञानिक विचारधाराओं से प्रभावित सेंट बेव की उद्भावनाएँ एक प्रकार की जीव-शास्त्री दृष्टि की परिचायक हैं। जो कृति का समग्र मूल्यांकन करने से पहले कृतिकारके जीवनी का अध्ययन आवश्यक मानती हैं। फ्रेंच साहित्यमें व्याप्त इस मतवाद का विरोध करते हुए वह कहता हैंकि 'केवल पुरानी और बहुप्रशंसित या आदर्शवादी रुप धारण किये हुई रचनायें क्लासिक होने की क्षमता रखती है, उसका सृष्टा या जनक वह होता हैंकि, जिसने मानव मन को समृध्द बनाया हो, उसके ज्ञानभंडार में ज्ञान की भरमार हो। उसने अपनी विशिष्ट शैलीमें सबको संबोधित किया हो, वह शैली ऐसी हो जो विश्व की शैली प्रतित हो, वह किसी एक युग की भी शैली हो और युगोंयुगों की।' 2 सेंट बेव का यह कथन उस युग की नितांत असामाजिक विचारधारामें एक प्रगतिशील चेतना को स्वर देता हैं।

---

1. डॉ. भक्तराम शर्मा - मार्क्सवाद और हिन्दी कविता - पृष्ठ 11
2. रामप्रसाद त्रिवेदी - प्रगतिवादी समीक्षा - पृष्ठ 125

टेन के मतानुसार साहित्य का दूसरा प्रेरणा स्त्रोत उसके चारों ओर फैली परिस्थितियाँ होती हैं। इसमें भौगोलिक, राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक आदि परिस्थितिओं का समावेश होता हैं। इसमें टेनने स्वीकार किया हैंकि, कलाकृति परिस्थितियों की देन हैं। अन्य किसी इसके साथ जीवन के साथ चलनेवाली युगचेतना भी निरंतर विकासशील है। वह अपने युग के संस्कारों को लेकर आगे बढ़ती है।

टाल्स्टाय :- आदर्शवादी समाजवादी भावोंसे अनुप्रेरित टाल्स्टाय के कला सिध्दांत इस यथार्थवादी शृंखला की महत्वपूर्ण कड़ी हैं। उनके चिंतन के समाजवादी आधारों का मार्क्सवादी समीक्षामें विशिष्ट महत्व है। रचनात्मक साहित्य के माध्यम से इन्होंने जिस स्वस्थ यथार्थवादी कला का महान आदर्श प्रस्तुत किया है। वह इस समीक्षा के विकासमें एक प्रेरणा स्त्रोत का कार्य करता रहा हैं।

'साहित्य और कला का जन जीवनसे अभिन्न संबंध स्थापित करते हुए टाल्स्टायने उच्च वर्ग की कला तथा कला के लिए के आदर्शोंपर प्रस्फुटित होनेवाली -हासोन्मुखी प्रवृतियोंका घोर विरोध किया हैं।' 1 उसके मतानुसार ये प्रवृत्तियाँ जनता की गुलामी के कारण पैदा हुई, टाल्स्टाय की कला केवल भोग और भावन की वस्तु नहीं थी वह उसका सबसे बड़ा साधक और सृष्टा भी था। ऐसा जागृत सृष्टा जो अपनी धार्मिक विचारधारा और नैतिक धारणाओंका आरोपण जीवन के यथार्थ चित्रणपर नहीं करता था।

बेलिन्सकी :- रुस के महान प्रगतिशील विचारक बेलिन्सकी साहित्य चिंतन के क्षेत्रमें यथार्थवादी दृष्टि के प्रथम संस्थापक है। कला विवेचन की दृष्टिसे बेलिन्सकी के कृतित्व का विशिष्ट मूल्य हैं। अपने कला-सिध्दांतों के माध्यमसे उन्होंने साहित्य-समीक्षा के क्रांतिकारी तथा समाजवादी आदर्शों को व्याप्ति दी हैं।

बेलिन्सकी वास्तविकता को कला का श्रेष्ठ मापदंड मानते हैं। 'वास्तविकता आधुनिक जगत् का परम सूत्र और नारा है। तथ्योंमें, विश्वासोंमें, मानसिक निष्कर्षोंमें, वास्तविकता, हर चीज और हर जगह वास्तविकता ही हमारे युग का पहला और अंतिम स्वर हैं' 2

वास्तविकता, कलात्मक पूर्णता और प्रतिमा बेलिन्सकी के कला संबंधी ये तीन मूलभूत विचार सूत्र हैं। उन्होंने प्रथमतः यह निर्णय दिया की -

---

1. रामप्रसाद त्रिवेदी - प्रगतिवादी समीक्षा - पृष्ठ 123
2. रामप्रसाद त्रिवेदी - प्रगतिवादी समीक्षा से उधृत - पृष्ठ 25
3. रामप्रसाद त्रिवेदी - प्रगतिवादी समीक्षा से उधृत - पृष्ठ 26

कलाकार की अद्वितीय शक्ति का दृष्टांत देते हुए बेलिन्सकी कहते हैं - 'विषय को उसकी समूची यथार्थता के साथ पकडना और उसमें जीवन की साँस फूँकना इसीमें उसकी शक्ति, विषय, संतोष और गर्व निहित हैं।' परंतु प्रश्न यह उठता हैंकि, कला का उद्देश क्या है? बेलिन्सकी के विचारानुसार 'कला का उद्देश है, चित्रित करना, शब्दों, ध्वनियों, रेखाओं और रंगोंमें प्रकृति के सार्वभौम जीवन को मूर्त करना यही कला की एकमात्र और चिरंतन विषयवस्तु हैं।' 1

इसप्रकार हम देखते हैंकि, आलोचना के क्षेत्रमें यथार्थ चित्रण के प्रति इतना आकर्षण बेलिन्सकी के पूर्व नहीं परिलक्षित होता। उसने सर्व प्रथम यह घोषणा की थी कि, 'यथार्थ धरती से उद्‌भूत होता है और प्रत्येक यथार्थ की धरती समाज हैं। 2

चर्निशेवस्की :- बेलिन्सकी की साहित्य और कलासंबंधी यथार्थवादी विचारधारा को विकसित करनेमें रुसके दूसरे प्रगतिशी चिंतक चर्निशेवस्की का नाम उल्लेखनीय हैं। उसकी कलाने रुसी जनता के स्वातंत्र्य संग्राम का एक महत्वपूर्ण शस्त्र सिध्द करने का प्रशंसनीय कार्य किया हैं।

चर्निशेवस्की ने अपनी सुप्रसिध्द कृति "Aesthetic Relation of Art to Reality" में हीगेल के आदर्शवादी सौंदर्य-सिध्दातोंका खंड़न करते हुए, रुस के उदारवादी और सामंतवादी चिंतकों की निंदा की हैं। शुध्द कला का आदर्श जनता की भावनाओंको सामाजिक जीवन के महत्वपूर्ण समस्याओंसे विमुख कर एक ऐसे लोक की ओर ले जाने को उत्सुक है। जहाँ वास्तविकता के सारे सूत्र समाप्त हो जाते हैं। उसके अनुसार वास्तविकता से विलग होकर कल्पना की मुक्त उड़ान केवल वैज्ञानिक धरातल पर ही अनुपयुक्त नहीं हैं। अपितु कला के क्षेत्रमें भी वह हानिकर हैं।

आदर्शवादी चिंतकोंने सौंदर्य की उत्पत्ति कल्पनाद्वारा संभव मानी थी। उनके अनुसार वस्तु जगतमें सौंदर्य के अभाव की पूर्ति के लिये ही मानवीय इच्छा से कला की निर्मिती होती हैं। इसका खंड़न करते हुए चर्निशेवस्की ने जीवन को ही सौंदर्य का पर्याय घोषित किया।

दूसरे श्रेणीमें मार्क्स तथा एंगेल्स ये प्रमुख विचारक हैं। मार्क्स मूलतः समाजदृष्टा थे और उनके समाजदर्शन के अंतर्गत ही कई ऐसे महत्वपूर्ण सूत्र उपलब्ध है जिन्हें कला तथा साहित्य समीक्षा के क्षेत्रमें भी सफलतापूर्वक लागु किया जा सकता हैं। उदाहरण के लिए उनका "Kritic our Political Economy" की भूमिका के अंश देख सकते हैं।

---

1. रामप्रसाद त्रिवेदी - प्रगतिवादी समीक्षा से उधृत - पृष्ठ 28
2. रामप्रसाद त्रिवेदी - प्रगतिवादी समीक्षा से उधृत - पृष्ठ 29

आर्थिक धरातलमें परिवर्तन आते ही व्यापक उत्पादन भी किसी न किसी रुपमें परिवर्तित होता हैं। ऐसे परिवर्तनोंपर विचार करते समय हमें हमेशा उत्पादन की आर्थिक परिस्थितियाँ जिन्हें पदार्थ विज्ञान के भाँति सही-सही पढा जा सकता है और कानूनी, राजनीतिक, धार्मिक, कलात्मक या दार्शनिक रुपों के बीच जिनमें मनुष्य इस संघर्ष के प्रति सचेत होता है, अवश्य भेद करना चाहिए।

इन उध्दरणोंमें बहुतसी बातें स्पष्ट रुपमें दी गई है।

1. मनुष्य की भावसृष्टि अथवा उसके विचारधारा के भिन्न-भिन्न रुप जिसके अंतर्गत कला तथा साहित्य की भी स्थिति है, समाज के भौतिक पृष्ठभूमिपर से ही निःसृत तथा नियत हैं।

2. दूसरी बात यह हैंकि समाज जीवनमें उसके विकास कार्यमें समाज के हृदयमें क्रांतिमूलक चेतना का विकास करनेमें विचारधारा के विभिन्न रुप महत्वपूर्ण सहयोग देते हैं।

ये सूत्र ही मार्क्सवादी तथा प्रगतिवादी समीक्षा के केंद्र बिंदु हैं। इसके आधारपर मार्क्सवादी विचारक एक ओर यह सिध्द करता हैंकि, कवि की चेतना उसकी भावनाए अनुभूति तथा कल्पना उसके सामाजिक परिवेशसे प्रतिक्षण प्रवाहित होती हैं। वहाँ दूसरी ओर सिध्द करने का प्रयत्न यह होता हैंकि कलाकृतियों का उद्देश केवल स्वान्तःसुखाय तथा अलौकिक आनंदानुभूति ही नहीं बल्कि सामाजिक जीवन की संघर्ष स्तर को नये सिरे से प्रभावित करके साहित्य को बहुजनहिताय बनाना हैं।

मार्क्स के इसी तत्वको सामाजिक जीवनमें आर्थिक स्थितियों का महत्वपूर्ण सहयोग हैं और विचारधारा के विभिन्न रुप उसीसे प्रभावित होते हैं। उसे विश्लेषित करते हुए एंगेल्स कहते हैं - 'राजनीतिक, दार्शनिक, धार्मिक साहित्यिक और कलात्मक विकास आर्थिक विकासपर आधारित हैं। लेकिन ये एक दूसरे को प्रभावित करते हैं और आर्थिक धरातल भी इनसे प्रभावित हुए बिना नहीं रहता। लेकिन ऐसी बात भी नहीं हो सकती। आर्थिक स्थिति ही एकमात्र कारण हो, एकमेव वही सक्रीय हो। जब कि प्रत्येक दूसरी वस्तुएँ निष्क्रिय रुपसे केवल प्रभाव ग्रहण करती हो। इसके विपरीत आर्थिक आवश्यकता के आधारपर उनके बीच अंतर-संबंध की स्थिति रहती हैं।

अतः मार्क्स के उपर्युक्त निष्कर्षों का अर्थ यह नहीं लगाया जा सकता की समाज का भौतिक तथा आर्थिक जीवन उसके कला तथा साहित्य को सीधे प्रभावित करता हैं। मार्क्स का मत था कि, जीवन का यह भौतिक विधान अंत तक भौतिक विधान को निर्धारित करता है, लेकिन उन्होंने यह नहीं सोचा की इन दोनों का बीच का संबंध सीधा है, सहज हैं। यंत्रवत विकसित होनेवाला हैं। यदि कोई उनके सामने यह विचार रखता की चूँकी पूँजीवाद, सामंतवाद की जगह लेता है, इसीलिये एक

पूँजीवादी कला तुरंत सामंतवादी कला की जगह आ जाती है।

कलाकृतियों के उच्चतम विकासके कुछ युग समाज के सामान्य विकास से कोई प्रत्यक्ष संबंध नहीं रखते। इस संबंधमें निजी चरित्र की ओर भी संकेत करते हुए मार्क्स कहते हैंकि, - 'कला के कतिपय रुप, उदाहरण के लिए एपास आदि कलाके अविर्भाव कालमें ही नहीं विकसित किये जा सकते। कला के क्षेत्रमें कतिपय महत्वपूर्ण रुपोंकी उद्‌भावना उसके विकास के निम्न धरातलपर ही संभव हैं। 1

श्री शिवदान सिंह चौहान ने मार्क्स की इन्हीं पंक्तियों को लक्ष्य करते हुए 'साहित्य की परख' शीर्षक निबंध में कहा हैंकि - मार्क्स का यह उद्देश कला के सामाजिक सूत्रों की खोज नहीं बल्कि उसकी सौंदर्यमूलक क्षमता की ओर भी संकेत करना हैं।

यथार्थवाद संबंधी एंगेल्स की धारणा उनके इस कथन को प्रमाणित करते हैं। उनके मतसे यथार्थवाद 'विशिष्ट परिस्थितियों के अंतर्गत विशिष्ट चरित्रोंका वास्तविक चित्रण हैं।' 2

वर्गीय समाजमें हमारी निर्माण प्रक्रिया तथा निर्मित वस्तुओं का उद्देश क्या है, मार्क्स ने इस तथ्य की ओर भी संकेत किया है। उसके मतानुसार भौतिक धरातलपर विकसित होनेवाली क्रांति का प्रथम आभास विचारधारा के विभिन्न रुपोंमें ही उपलब्ध होता हैं। एंगेल्स के अनुसार वे एक दूसरे को प्रभावित नहीं करते, भौतिक पृष्ठभूमि को ही प्रभावित करते हैं। विचारधारा के इन विभिन्न रुपों के अंतर्गत ही काव्य की और कला की भी स्थिति हैं। अतः सौंदर्य सिध्दांतानुसार चलानेवाली मनुष्यकी निर्माण प्रक्रिया अपने सामाजिक लक्ष्य की उपेक्षा नहीं कर सकती।

लेनिन :- मार्क्सवादी आदर्शोंको व्यावहारिक धरातलपर उपयुक्त करनेका प्रथम श्रेय लेनिन को हैं। रुसी समाज को मार्क्स तथा एंगेल्स के तत्वोंनुसार ढालना उसका एकमात्र लक्ष्य था। साहित्य-विषयक उसके विचार इसी लक्ष्यसे संबंधित है। अपने प्रसिध्द निबंध - "Party Organisation and Party Literature में साहित्यको साम्यवादी दल तथा श्रमिक वर्ग के हित करनेवाला आवश्यक अंग मानते हुए स्पष्ट शब्दोंमें कहा हैं - 'कला तथा साहित्य के क्षेत्रमें मनुष्य के व्यक्तिगत विचार तथा कल्पना के लिए अवकाश अपेक्षित हैं। लेकिन इसके कारण वह साम्यवादी दल के

---

1. रामप्रसाद त्रिवेदी - प्रतिवादी समीक्षा - पृष्ठ 38
2. शिवकुमार मिश्र - यथार्थवाद - पृष्ठ 127
(Realism to my mind implies besides turth of detail the turthful reproducation of typical characters under typical circum stances).

कार्यपध्दति के साथ साहित्य की पूर्ण अदाकारिता कें आदर्श पर किसी प्रकार की आँच नहीं आने देता। क्रांति के बाद सोवियत साहित्यमें विकसित नूतन चेतना के संबंधमें क्लेरा जेटकिन से वार्तालाप के क्रममें उसने कहा था - 'प्रत्येक कला, कला का पुजारी तथा कलाविद् पूरी स्वतंत्रता के साथ अपने हृदय की प्रेरणा के अनुसारण बिना दबाव के अपनी कला का विकास कर सकता हैं। बात केवल इतनी ही हैंकि इस साम्यवादी जीवन के किसी क्षेत्रमें अव्यवस्था को फैलते देखकर चुपचाप नहीं बैठे रहते।' ।

कला तथा साहित्यविषयक लेनिन के प्रमुख आदर्श सामाजिक सोदेश्यता के ही विशेष व्यंजक हैं। उसके अनुसार कला मानवीय समुदाय की समष्टी की वस्तु है, उसका प्रमुख उद्देश है जनता के विचार भाव और इच्छाशक्ति को संगठित करके जीवन को उन्नत करना। इस संबंधमें लेनिन का मत हैकि, सर्वसाधारण की केंद्र भूमिसे कला की जड़ पनपनी चाहिए। सर्वसाधारण के हृदयमें जा कलाकार है, उसे जागृत करके उसका विकास करना, उसके मतसे, कला का धर्म हैं।

विविचन की दृष्टिसे लेनिनद्वारा टालस्टाय के कृतित्व की समीक्षा पर्याप्त महत्वपूर्ण है। लेनिन के मतानुसार टालस्टाय की रचनापर दो तरह के प्रभाव परिलक्षित होते है। एक ओर वह पूँजीवादी व्यवस्था के सामाजिक संगठन की प्रतिछाया से मुक्त नहीं है, तो दूसरी ओर किसान और श्रमिक वर्ग की प्रगतिशील शक्ति से भी वह अनिभिज्ञ नहीं हैं। बल्कि सही अर्थमें उसके निर्माणमें इसी श्रमिक दल की चेतना की स्थिति है और टालस्टाय अपने मध्यमवर्गीय संस्कारों से विमुख नहीं है। इसी कारण से क्रांति का समर्थन करते हुए भी उसके विचार सिर्फ प्रतिक्रिया व्यक्त करनेवाले प्रतित होते हैं।

माओ-त्से-तुंग :- लेनिन के बाद साहित्य को व्यावहारिक आदर्शमे प्रस्तुत करनेवाले दूसरे विचारक है, माओ-त्से-तुंग। मई 1942 में आयोजित 'येनान की गोष्ठी' में कला तथा साहित्य के संबंधमें निम्नलिखित दृष्टियों से विचार किया है - कला तथा साहित्य का निर्माण किनके लिए अपेक्षित है?

माओ के मतानुसार इस प्रश्न का समाधान बहुत पहले लेनिनद्वारा व्यक्त किया गया है। 1905 में इसके संबंध में लेनिन ने कहा था 'कला तथा साहित्य का उद्देश बहुसंख्यक श्रमिक वर्ग के हितोंकी रक्षा करना हैं। लेकिन प्रश्न यह उठता हैकि, श्रमिक वर्ग के अंतर्गत किनका समावेश है। माओ ने इसमे अंतर्गत मजदूरों, किसानों, क्रांतिमें भाग लेनेवाले सशस्त्र मजदूरों, किसानों तथा निम्नवर्ग के बुजूर्ग लोगोंने उस श्रमिक समुदायकी स्थितिको स्वीकार किया जो क्रांतिमें सहायक हो इसके अंतर्गत बुध्दिजीवी

---

1. रामप्रसाद त्रिवेदी - प्रगतिवादी समीक्षा से उधृत - पृष्ठ 40

भी सम्मिलित है।

दूसरा पश्न यह उपस्थित हुआ की कला तथा साहित्य किस प्रकार अपने उद्देश की पूर्ति कर सकते है?

यह पश्न कला तथा साहित्य के सृजन से संबंधित है, इसका समाधान माओ ने दो दृष्टियोंसे प्रस्तुत किया है -

पहली दृष्टि बहुसंख्यक श्रमजीवी वर्ग की कलात्मक रुचि तथा क्षमता के उन्नयन की है। दूसरी दृष्टि कला तथा साहित्य के व्यापक प्रसार अथवा उनकी लोकप्रियता से संबंधित है। उन्नयन का अर्थ है उन्हें सर्वहारा वर्ग के मार्गपर अग्रेसर करते हुए उसीके उच्चतर धरातल की ओर ले जाना।

यहाँ यह भी प्रश्न उपस्थित होता हैकि, कला तथा साहित्य के उद्भव का स्त्रोत क्या है? माओ के मतानुसार जनजीवन से यह स्त्रोत प्रस्फुटित होता है। कला तथा साहित्य का कच्चा माल लोकजीवनमें ही विद्यमान है। प्रश्न यह आता हैकि, प्राचीन युगों अथवा दूसरे देशोंकी कला-कृतियाँ नये कलाकृति का स्त्रोत बन नहीं सकती। हमें उनका जो भी उपादेय अंश है, उसे ग्रहण करना चाहिए, दूसरी ओर हमें अपने समय के लोकजीवन को भी नई कला तथा साहित्य निर्माण के लिए आधार बनना चाहिए। माओ इस दूसरे आधारको महत्त्वपूर्ण मानते हैं। इसके लिए जनजीवन के बीच सहृदयतासे प्रवेश करना चाहिए, उनके संघर्षमें भाग लेना चाहिए। तभी हम साहित्य तथा कला के मूल स्त्रोत को समझ सकते हैं, उसका अध्ययन कर सकते हैं।' [1] ।

क्रांतिकारी और साहित्य को वास्तविक जीवन के आधारपर विभिन्न पात्रोंका निर्माण करते हुए बहुसंख्यक वर्ग के ऐतिहासिक विलासमें योग देना चाहिए। इसी वैशिष्ट्य के कारण ही कला और साहित्य का लोकजीवनमें महत्त्वपूर्ण स्थान है।

यहाँ यह भी विचारणीय हैंकि, कला तथा साहित्यमें उन्नयन तथा उसके प्रसार का अर्थ क्या है? कला और साहित्य का क्या संबंध है? जो कृतियाँ लोकप्रिय होती है उसे जनसमाज सहज स्वीकृत करता है, लेकिन जो कृतियाँ चमत्कारी तथा स्निग्ध और उच्चस्तर की कृति होती है तो उसे आसानी से ग्रहण नहीं किया जा सकता और ऐसी कृतियाँ जनता का हृदय नहीं जीत सकती।

सामान्य जनसमुदाय की संस्कृति सतत विकसित होती रहती है। अतः लेखकों को उसी अनुसार

---

1. रामप्रसाद त्रिवेदी - प्रगतिवादी समीक्षा - पृष्ठ 62

कलाकृतियाँ प्रस्तुत करनी चाहिए। कला तथा साहित्यमें उन्नयन आवश्यक हैं। लेकिन जिस प्रसार का माध्यम व्यापक जनसमुदाय उसीतरह का भी लक्ष्य होना चाहिए। कला और साहित्यमें उन्नयन का अर्थ व्यापक प्रसार तथा लोकप्रियता के धरातलपर किया गया उन्नयन है। इसका अविर्भाव लोकप्रियता के धरातलपर ही संभव हैं।

'अर्थात उन्नयन का अविर्भाव न तो हवामें होता है न बंद दरवाजे के भीतर। तात्पर्य कोई भी कलाकृति सभी उन्नत कहीं जा सकती हैं, जब विस्तृत जनसमुदाय को उससे लाभ हो, अथवा उनके हित संरक्षण का साधन बने।' 1

लेकिन प्रश्न यह उठता हैंकि, साम्यवादी दल क्यों इतना अधिक साहित्यिक तथा कलात्मक तथ्योंपर अपने को केंद्रित रखता है? इस पश्न का उत्तर देते हुए खुश्चेव ने कहा हैं। 'साहित्य और कला को साम्यवादी दलकी वैचारिक सक्रियता के बीच असामान्य उद्देश की पूर्ति करता हैं और वह असामान्य उद्देश है, सामान्य जनता को साम्यवादी आदर्शो में प्रशिक्षित करना।' 2

अपनी रचना के निर्माण के से लेखक, कलाकार, मूर्तिकार, संगीतज्ञ, रुसी समाजकें रचनात्मक निर्माणमें सक्रीय सहयोग दे सकते है और अधिक विश्वासार्हता से जनता की सेवा कर सकते हैं। साम्यवादी दल साहित्य को और कलाकारों को अपना सच्चा मित्र तथा सहयोगी मानता हैं। साम्यवादी दल का लक्ष्य हैंकि, साहित्य और कला अपने वैचारिक तथा कलात्मक पूर्णता को ग्रहण करते हुए विकसित हो। हमारी जनता साहित्य चित्र और संगीत की वैसी कृतियाँ चाहती हैं।

तीसरी कोटि - मार्क्सवादी साहित्य चिंतक -

कलाचिंतन तथा काव्य के क्षेत्रमें मार्क्सवादी पध्दति को स्वीकारनेमें अग्रसर होनेवाले विचारकोंमें जी प्लेखनोव का प्रथम स्थान है। उनके "Art and Social Life" कृतिमें मनुष्य की कलात्मक चेतना के विकास तथा सामाजिक जीवन से उसके संबंध का विस्तृत विवेचन हैं। सर्व प्रथम प्लेखनाव ने टॉलस्टाय का कथन - मनुष्य शब्दों के माध्यमसे अपने भावोंको संप्रेषित करता हैं। इसका खंडन करते हुए कहा है - कला केवल मनुष्य के भावों को ही नहीं वह उनके भाव तथा विचार दोनों को प्रकाशित करती हैं। भले ही यह प्रकाशन अमूर्त रुपसे नहीं होता बल्कि जीवंत प्रतीकों के माध्यमसे होता हैं।

---

1. रामप्रसाद त्रिवेदी - प्रगतिवादी समीक्षा - पृष्ठ 63
2. रामप्रसाद त्रिवेदी - प्रगतिवादी समीक्षा - पृष्ठ 63

BALASAHEB KHARDEKAR LIBRARY SHIVAJI UNIVERSITY KOLHAPUR

(Such elevation does not take place in mid-air, nor behind closed doores but on the basis of popularisation)

कला के संबंधमें जैसा कि प्लेखनोव ने कहा हैं - यह एक ऐतिहासिक तथा भौतिकवादी दृष्टि है। लेकिन कला की उद्भावना किसके लिए होती है। कला तथा समाज के पारस्परिक संबंध का विश्लेषण करते हुए वह कहते हैं - इसके संबंधमें दो प्रकार की धाराओं का उल्लेख किया हैं।

(क) प्रथमतः कुछ लोगों की धारणा हैं कि, कला मानवीय चेतना तथा सामाजिक व्यवस्था के विकास का साधन हैं।

(ख) अन्य कुछ ऐसे भी है जो कला को किसी लक्ष्य विशेष की पूर्ति का माध्यम न मानकर स्वयंमें उसे ही लक्ष्य मानते हैं।

प्लेखनोव के मत से कला के लिये ही आदर्शों को प्राधान्य देना चाहिए, तो दूसरी ओर कला की सोद्देश्यता या उपयोगिता विषयक जो प्रवृत्ति थी वह उत्साह के साथ सामाजिक संघर्षमें भाग लेने के लिए उत्सुक थी। इस प्रवृत्ति का विकास प्लेखनोव के मत से तब होता है जब समाज और ऐसे व्यक्तियों के बीच जिनकी सर्जनात्मकता कला के प्रति सक्रीय रुचि हो और उनमें आपसमें सहानुभूति तथा सामंजस्य की भावना हो।

कलाकृति के उत्कर्ष के बारेमें उसका मत है अंतिम विश्लेषणमें वस्तुतत्व का ही उत्कर्ष है। कलाकार और कवि की रचनाएँ उसके मत से हमेशा कुछ न कुछ कहती है, उनका उद्देश हमेशा किसी लक्ष्य को व्यक्त करना रहता हैं। भले ही नियम कुछ भी हो, सामान्य व्यक्ति की तरह वह तर्कपूर्ण निष्कर्ष नहीं प्रस्तुत करता। अगर अपने भावों को व्यक्त करनेमें वह तार्किक पध्दति अपनाता हैं, तो वह प्रचारवादी बन जाता हैं। इसका अर्थ यह भी नहीं कलाकृतिमें विचारोंको कोई स्थान नहीं।

काडवेल :-

साहित्यीक समीक्षा के क्षेत्रमें मार्क्सवादी विचारोंकी स्थापना प्रथम काडवेल द्वारा हुई। उनकी प्रसिध्द "Illusion and Reality" में उन्होंने स्वीकार किया हैंकि, ऐतिहासिक भौतिकवाद ही उनकी कला समीक्षा का आधार है। इस क्षेत्रमें प्रवेश करने का अर्थ काडवेल के नुसार - 'कला के बाहर स्थित होकर उसे परखने का प्रयत्न करना, इसका अर्थ है समाजके अंतर्गत स्थित होना।' । कला तथा साहित्य का विवेचन समाजशास्त्रीय होना चाहिए।

ऐतिहासिक भौतिकवाद की दृष्टिसे काडवेलने प्रथम काव्य के उद्भव और विकास का विस्तृत

---

1. शिवकुमार मिश्र यथार्थवाद - पृष्ठ 150
(To stand outside art is to stand inside society)

विवेचन किया है। कविता के आदिम रुपपर दृष्टि डालते हुए वे यह निष्कर्ष निकालते हैं। प्रथम कविता का जहाँ जन्म हुआ वह समाजफल इकठ्ठे करनेवाले शिकारियों का था। यह वर्गहीन समुह की सामान्य भाव और विचार रखता हैं। उसके सामुहिक संवेग लययुक्त भाषामें अभिव्यक्त होते थे और यहीं उच्चतर गेय भाषा कविताका आदिम रुप हैं। कविता का ये प्रारंभिक रुप एक ऐसे समाज की देन था जिसमें आर्थिक विषमता का कोई स्थान नहीं था। अतः उस समाजमें सामुहिक संवेग अथवा सामुहिक भाव निर्माण होना सहज संभव था। लेकिन श्रम विभाजन के साथ सामाजिक जीवनमें नया परिवर्तन आकर वर्गीय समाज की सृष्टि हुई। शासक वर्ग को केंद्र मानकर समाज की सारी चेतना एकत्रित हुई।

काडवेले के मतानुसार, कवियोंकी जो रागात्मक चेतना है वह केवल मनोवैज्ञानिक और निजी कारणोंसे नहीं तैयार हुई। इनका जीवन सौंदर्यबोध, नीति, धर्म, सामाजिक, नैतिक, कानून और दर्शन इत्यादी से परिवर्तित हुई हैं।

काडवेल के नुसार, आधुनिक कविता की विशेषता है लयता, अबौध्दिक, अप्रतीकात्मक, मूर्तता और सौंदर्य संवेदन हैं। "Illusion and Reality" के उत्तरार्धमें काडवेलने काव्य के मनोवैज्ञानिक पक्षपर बल दिया है। उसने फ्रायड के मत को स्वीकारा है कि, बहुतसे स्वप्न तथा कविताएँ कामेच्छा व्यक्त करनेवाली होती हैं। लेकिन कविता और स्वप्नमें भेद है। स्वप्नमें मनुष्य मनोविकार का गुलाम होता हैं, तो कवितामें उसपर अधिकार जताता हैं। स्वप्नोंमें मानव विकारों का मुक्त प्रवाह होता है। कविता का स्वप्न समाजद्वारा निर्दिष्ट और प्रभावित व्यक्ति का स्वप्न है जो अपनी व्यक्तिगत चेतना के द्वारा एक समस्त वर्ग की रचनात्मक भूमिका को प्रसारित करता है।

मार्क्स का भौतिकवाद -

मूल चेतना :-

मार्क्सवाद का मूलाधार मानवता है। कार्ल मार्क्स का आदर्श वाक्य था - 'मानवता के लिए कार्य करो' विज्ञान के बारेमें भी उनकी यही धारणा थी की, उन्हें सर्वप्रथम मानव की सेवा करनी चाहिए।' 1 इसीलिए मार्क्सवाद का मूल उद्देश्य समाजवाद या साम्यवाद की स्थापना करना हैं।

मार्क्स के विचारनुसार जो आंदोलन हुआ उसकी मूल चेतना द्वंद्वात्मक भौतिकवाद है। मार्क्स का मत हैकि, इससे केवल समसामयिक ही नहीं, भावी परिवर्तनों की दिशा भी ज्ञात होती हैं। मार्क्सने

---

1. डॉ. भक्तराम शर्मा - मार्क्सवाद और हिन्दी कविता - पृष्ठ 18

द्वंद्वात्मक पध्दति के विचार हीगेल से ग्रहण किये हैं। इसप्रकार मार्क्सवाद एक नयी, वैज्ञानिक और मानवतावादी जीवन-दृष्टि है, जो दर्शन के क्षेत्रमें द्वंद्वात्मक और ऐतिहासिक भौतिकवाद पर आधारित हैं।

मार्क्सवादी के मुख्य सिध्दांत निम्नलिखित हैं -

द्वंद्वात्मक भौतिकवाद -

मार्क्सवाद फ्रायड की तरह समाज को व्यक्ति के लिए अभिशाप नहीं समझता बल्कि वरदान मानता हैं। समाज संगठन में ही उसे सुरक्षा और स्वतंत्रता मिली हैं। इस संगठन से ही श्रमसंगठन संभव हो सका हैं और उसके द्वारा भाषा, सभ्यता और ललित-कलाओंका विकास हुआ।

समाज उसकी सभ्यता, संस्कृति और रीति-रिवाज बदलते हैं। और यह परिवर्तन के कुछ नियम रहते हैं। एक विशेष सामाजिक व्यवस्थामें जब उत्पादन के नये साधन उत्पन्न होते हैं, तो उसे प्रयोगमें लानेवाला एक नया वर्ग, नई चेतना, शक्ति उत्पन्न होती है। जब ऐसी समाज व्यवस्थामें उत्पादन का विकास रुक जाता हैं, तो सभ्यता और संस्कृति का विकास रुक जाता हैं। तब ऐसी व्यवस्था बदलने की जरुरत महसूस होती है। लेकिन आदिम साम्यवाद के बाद जितनी भी व्यवस्थाएँ आई, उसमें उत्पादन के साधनोंपर एक वर्ग का कब्जा रहा। अपने हितके लिए यह वर्ग समाज व्यवस्थामें कोई तबदीली नहीं आने देते। शासित वर्ग संघर्ष के लिए तैयार होता है, और क्रांति अनिवार्य हो जाती हैं।

'क्रांति कुछ उत्पात या हड़ताल से नहीं होती बल्कि ऐतिहासिक नियमोंके अनुसार होती हैं। क्रांतिका नेतृत्व नई और संगठित, सामाजिक शक्ति करती हैं। फिर क्रांति के बाद निर्माण होनेवाला समाज आसमानसे नहीं टपकता बदले हुए पुराने समाज के गर्भसे वह उत्पन्न होता है। यह समाज पूरी तरह नया नहीं होता पुराने समाज के जो रुढिवादी और क्रांति को विरोध करनेवाले अवशेष रह जाते हैं। उसके विरुध्द नई शक्ति समाज पूरी तरह सुरक्षित होने तक संघर्ष जारी रखती हैं।' 1

इस सामाजिक परिवर्तन और क्रांति के जो ऐतिहासिक नियम हैं, उनका मार्क्स ने प्रथम अभ्यास किया और उनका दार्शनिक नाम द्वंद्वात्मक भौतिकवाद रखा।

द्वंद्वात्मकता :-

'यह शब्द अंग्रेजी के 'डायलैक्टिस' का पर्याय है। डायलैक्टिस शब्द युनानी शब्द दियोलोग से

---

1. हंसराज रहबर - प्रगतिवाद पुर्नमूल्यांकन - पृष्ठ-81

उद्भूत हुआ - दियोलोग का अर्थ है द्विसंवाद, दो व्यक्तियों के प्रश्नोत्तर' । 1

हीगेल के द्वंद्ववादसे अपने द्वंद्ववाद को अलग करते हुए मार्क्स अपने प्रसिध्द ग्रंथ 'पूँजी' के दूसरे संस्करण के परिशिष्टमें कहते हैं - 'मेरी द्वंद्ववादी पध्दति हीगेल से भिन्न है, द्वंद्ववाद बाह्य संसार और आंतरिक मानव-विचारोंकी गतिशिलता के सामान्य नियमों के अध्ययन का विज्ञान हैं।' 2 विरोधों के अध्ययनमें प्रवृत्त होनेवाली पध्दती द्वंद्वात्मक कहलाती हैं। 'स्तालिन के मतानुसार मार्क्स की द्वंद्वात्मकता के चार मूलभूत विशेषताएँ है -

(अ) द्वंद्वात्मक पध्दति नुसार प्रत्येक वस्तुमें निरंतर परिवर्तन और विकास की प्रक्रिया होती है, इस प्रक्रियामें, कुछ न कुछ हर समय नष्ट होता और उत्पन्न होता रहता है।

(आ) यह पध्दति प्रकृति को स्वाधीन वस्तुओं या घटनाओं का संघात नहीं मानती। उसके अनुसार सभी वस्तुएँ और घटना एक दूसरेसे संबंधित है। इसलिए किसी भी वस्तु या घटना को निरपेक्ष मानकर नहीं समझा जा सकता।

(इ) द्वंद्वात्मक पध्दति विकास प्रक्रिया को एक सरल प्रक्रिया नहीं मानती। वह एक ऐसी प्रक्रिया है, जिसमें परिमाणात्मक परिवर्तन एक सीमा तक गुणात्मक परिवर्तनों को जन्म देती हैं।

(ई) इस पध्दति के अनुसार निम्न से उच्च के विकास की प्रक्रिया के स्वरुपमें निहित अंतर्विरोधों का परिणाम हैं।' 3

निष्कर्ष रुपमें यह कह जा सकता हैकि, यह प्रणाली विश्व की प्रत्येक वस्तु को परिवर्तनशील और द्वंद्वात्मक मानती हैं।

भौतिकवाद -

भौतिकवाद शब्द का अर्थ यह हैंकि उस दर्शनमें संसार की प्रत्येक वस्तु को भूत अर्थात पदार्थ से उद्भूत, नियमित और संचलित माना जाता हैं। मारिस कार्न कोर्थ ने लिखा है - 'भौतिकवाद का अर्थ एक ऐसा दृष्टिकोण है जो भौतिक मानव जगत की समस्त घटनाओं की व्याख्या भौतिक तत्त्वों के आधार पर ही करती हैं।' 4

---

1. डॉ. भक्तराम शर्मा - मार्क्सवाद और हिन्दी कविता - पृष्ठ 19
2. डॉ. भक्तराम शर्मा - मार्क्सवाद और हिन्दी कविता - पृष्ठ 20
3. डॉ. रणजित - हिन्दी की प्रगतिशील कविता - पृष्ठ 33, 34
4. डॉ. रणजित - हिन्दी की प्रगतिशील कविता - पृष्ठ 34

मार्क्स और एंगेल्स के द्वंद्वात्मक और ऐतिहासिक भौतिकवाद में वस्तुवाद अपने विकास के सर्वोच्च शिखरपर पहुँचा। यह वाद हमारे दैनिक अनुभवों और पर्यवेक्षणोंपर आधारित है। नित्यप्रति के जीवनमें हम देखते हैंकि संसार की प्रत्येक वस्तु अंतमें नष्ट हो जाती हैं। जिसे जीवन प्राप्त हुआ, मरण उसका अनिवार्य उपसंहार है। समस्त प्रकृति इसी सत्य की साक्षी है। परिवर्तन इस सृष्टि का मूल सत्य है, और गत्यात्मकता उसका जीवन। इस परिवर्तन की प्रणाली द्वंद्वात्मक है, जिसके अनुसार प्रत्येक परिस्थिति विशेषमें ही उसके नाश के उपकरण सन्निहित हैं। परिस्थिति विशेष के इन्हीं विरोधी उपकरणोंमें संघर्ष होता है, जिससे नयी का जन्म होता है।

मार्क्स का मत हैकि, चेतना और बाह्य परिस्थितियोंमें संघर्ष होता है। यह संघर्ष निश्चित भौतिक परिस्थितिमें जन्म लेता है। इसलिये मनुष्य को जानने के लिए उसकी ऐतिहासिक, सामाजिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमिका अवलोकन अवश्य करना चाहिए। द्वंद्वात्मक भौतिकवाद मनुष्यो उसकी ठोस परिस्थितियों की सापेक्षतामें देखता है और उनके परिवर्तनों की प्रणाली उनके आंतरिक संघर्षों के अनुसार ही मानता हैं। एंगेल्सने इस विचारधारा को 'प्रकृति, समाज और चिंतन की 'गति के सामान्य नियमों का विज्ञान' कहा था। स्तालिन के मतानुसार यह द्वंद्वात्मक भौतिकवाद इसलिए कहलाता हैंकि, प्राकृतिक घटनाओं को देखने, परखने और पहचानने का ढंग द्वंद्वात्मक है तथा इन प्राकृतिक घटनाओं की इनकी व्याख्या कल्पना और सिध्दांत विवेचन भौतिकवादी है। इसीलिए आचार्य नरेंद्र देव ने द्वंद्वात्मक भौतिकवाद को दृश्य जगत की गति के नियमों की व्याख्या कहा हैं।' ।

द्वंद्वात्मक भौतिकवाद का सम्यक अध्ययन करने के लिए विकास के निम्नलिखित नियमों का अभ्यास करना चाहिए।

विकास को समझने के लिए परिवर्तन के दो प्रकार परिणामात्मक और गुणात्मक का अंतर और आपसी संबंधको समझना आवश्यक हैं। 'दर्शन में किसी वस्तु या घटना की मूल विशेषताओं का समग्र रुप जो उसे दूसरे वस्तुओंसे अलग करता है, गुण कहा जाता है।' 2

---

1. डॉ. भक्तराम शर्मा - मार्क्सवाद और हिन्दी कविता - पृष्ठ 22
2. डॉ. भक्तराम शर्मा - मार्क्सवाद और हिन्दी कविता - पृष्ठ 23

द्वंद्वात्मक भौतिकवादी की मान्यता के अनुसार भौतिक विकास की जो प्रक्रिया होती है वह सरल नहीं होती यह प्रक्रिया क्रमिक रुपसे एक ऐसी नवीन स्थितिमें पहुँच जाती जिससे गुणात्मक परिवर्तन आ जाता है। इस स्थिति में परिणाम की परिणति गुणमें हो जाती है।

द्वंद्वात्मक भौतिकवाद वास्तविकता को स्वभाव से ही अंतर्विरोधी मानता है। परिवर्तनों की प्रेरणाशक्ति विरोधों के संघर्ष को मानने की धारणा प्राचीन हैं। द्वंद्वात्मक यह मानता हैकि, किसी घटना, वस्तु, या प्रक्रियामें विरोधी वृत्तियाँ विद्यमान रहती हैं। ये प्रकृति, जीवन, चिंतन के प्रत्येक क्षेत्रमें इन अंतर्विरोधी के संघर्ष से विकासकी प्रक्रिया कायम रहती है। इसका परिणाम होता है, पुराने रुपों का विनाश और नये रुपोंका जन्म होता हैं।

'इसीलिए लेनिन ने विकास को 'विरोधों का संघर्ष' कहा था।' । किसी भी विकासशील वस्तु या स्थितिमें उसका अपना 'प्रतिवाद' निहित होता हैं। यही अंतर्विरोध उसे बदलता या विकसित करता रहता है। परिवर्तनमें आंतरिक कारणों के साथ बाह्य परिस्थितियों का भी प्रभाव पडता हैं। उदाहरण के तौरपर हम पूँजीपति वर्ग को वाद कहा जाये, तो मजदूर वर्ग को प्रतिवाद। पूँजीवादी व्यवस्थाओंमें उसके विरोधी तत्व की सत्ता थी। इसके विरोध के परिणाम एक संवाद का प्रार्दुभाव हो, जिसका यही रुप संभव था कि, पूँजीपति वर्ग का अन्त होकर कल कारखानों का संचलन मजदूर वर्ग के हाथोंमें आ जाये।

द्वंद्वात्म वस्तुवाद के अनुसार पुरानी वस्तुसे निर्मित हुई नयी वस्तु उस पुरानी वस्तु का निषेध करती हैं, प्रतिवेध करती है। लेकिन यहाँ तक विकास की प्रक्रिया समाप्त नहीं होती। नयी वस्तु के अंतर्गत भी विरोधी तत्व होते हैं। जो सही समय आनेपर प्रस्फुटीत होते है। फिर उन विरोधोंमें संघर्ष होता हैं। इसप्रकार विकास की प्रक्रिया प्रतिषेध की प्रक्रिया हैं।

इसप्रकार द्वंद्वात्मक भौतिकवाद, सृष्टि, समाज और मानव चेतना के प्रगतिशील विकास की रुपरेखा प्रस्तुत करते हुए एक वैज्ञानिक पार्श्वभूमीपर आधारित ऐतिहासिक आशावादिता से परिचित कराता है और अपने आपको तथा अपने परिवेशको सुयोग्य बनानेमें सहायक होता हैं।

ऐतिहासिक भौतिकवाद -

यह शब्द हिस्टोरिकल मैटीरियलिज्म का हिन्दी रुपांतर हैं। इसकी उत्पत्ति मार्क्सवादी लेखों

---

1. डॉ. भक्तराम शर्मा - मार्क्सवाद और हिन्दी कविता - पृष्ठ 24
लेनिन, कलैक्टिडवर्क्स

और विचारों से होती है। 'द्वंद्वात्मक भौतिकवाद को जब मानव इतिहासपर लागु किया जाता है तो उसे ऐतिहासिक भौतिकवाद कहते है। यह वाद मानव के इतिहास और समाज की एक विशिष्ट व्याख्या करने का प्रयास करता है, इसका दृष्टिकोण यथार्थवादी है। वस्तुतः द्वंद्वात्मक भौतिकवाद के सामाजिक रुपको ही ऐतिहासिक भौतिकवाद कहते हैं।' 1 यह वाद जीवन की भौतिक परिस्थितियों पर ही बल देता है। इसके अनुसार आर्थिक व्यवस्था के अनुकुल ही सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक व्यवस्थाओं की रचना की जाती हैं।

मारिस कोर्नेफोर्थ के मतानुसार ऐतिहासिक भौतिकवाद के तीन मूल सिध्दांत हैं -

1. सामाजिक परिवर्तन और विकास भी प्राकृतिक परिवर्तन और विकास की तरह कुछ निश्चित नियमों से चलते हैं।

2. सामाजिक परिवर्तन तो मानव की चेतनागत चेष्टाओं के परिणाम होते हैं। परंतु उनकी चेष्टाओं के परिणाम और पीछे की सचेत प्रेरणाएँ अंतिक विश्लेषणमें उनके सामाजिक अस्तित्व और उनके भौतिक जीवनके द्वारा निर्धारित होती हैं।

3. भौतिक मूलाधारपर खड़ा यह सामाजिक ढाँचा उस मूलाधार के विकासमें एक सक्रीय भूमिका निभाता हैं।' 2

इसप्रकार ऐतिहासिक भौतिकवाद मानव इतिहास की व्याख्या प्रस्तुत करता है। इस व्याख्याके अनुसार मानव इतिहास अबतक तीन व्यवस्थायों गुजर चुका हैं। ये तीन व्यवस्थाएँ निम्नलिखित -

अ) आदिम सामूहिक या साम्यवादी व्यवस्था

ब) सामन्ती व्यवस्था

क) पूँजीवादी व्यवस्था

आदिम समाज ने धनधान्य और संपत्ति को संग्रहित करके अपनी सभ्यता की उन्नति की। उसमें जो संपन्न जातियाँ थी उन्होंने अपनी शक्ति बढ़ाने के लिए दूसरे श्रेणी के धनविहीन लोगोंको अपना दास बनाकर और उनके द्वारा उनके धनमें वृध्दि हो गई। इसीसे समाजमें पैदावार की गति बढ़ गई और सभ्यता का विकास हुआ। गुलामोंद्वारा पैदा की गई संपत्ति से मनुष्य ने कुछ वस्तु वास्तुओंका निर्माण किया। उदा. हजारों मील लंबे रस्ते, तालाब, पिरॅमिड्स, युनान का मंदिर, भारत की विशाल मंदिरे।

---

1. डॉ. रणजित - हिन्दी की प्रगतिशील कविता - पृष्ठ 39
2. डॉ. रणजित - हिन्दी की प्रगतिशील कविता - पृष्ठ 40

गुलाम श्रमपूर्वक आवश्यक वस्तुओंका उत्पादन करते थे और जो संपत्तिवान धनिक थे वे संगीत, साहित्य, शास्त्र की चर्चा करते थे। गुलामों की परिश्रम के आधारपर समाज की संपत्तिका विकास हुआ। ज्ञानमें वृध्दि हुई।

कला-कौशल का विस्तार से कारखाने बनाये गये। यंत्रयुग शुरु हुआ। मशीनोंसे एक आदमी बीसियों की शक्ति का काम करने लगा। इसलिए मालिक लोगोंको गुलाम बोझ लगने लगें। क्योंकि मशीनपें एक असकेला आदमी कई लोगोंका काम कर सकता है, तो इन गुलामोंका पेट भरने की क्या आवश्यकता थी। ये गुलाम लोग और जमीनदारों के यहाँ काम करनेवाली रयत अपनी मालिक की बस्ती को छोड दूसरी जगह काम करने नहीं जा सकते थें। अब गुलाम पैदावार और सभ्यता के राहमें बाधा बन गये। इसलिये सामंती प्रथा के विरुध्द आंदोलन शुरु हुआ। इस प्रथा को समाज का कलंक मानकर मिटा देने का प्रयत्न किया गया। उनको समाजमें सम्मिलित किया गया।

समाज के आर्थिक संगठनमें अपनी उपजीविका करने की व्यक्तिगत स्वतंत्रता के सिध्दांतपर जो विकास आरंभ हुआ, उसका लक्ष्य था, उत्पत्ति के साधन जिनके हाथमें नहीं उनको उपजीविका करनेमें स्वातंत्र्य था। गुलाम लोग स्वतंत्रतापूर्वक व्यवसाय करें। इससे पैदावार बढाने को अवसर मिला। मशीनोंका अविष्कार हुआ। इससे मजदूर बेकार रहने लगे, उन्होंने सिर्फ उन्हें काम दिया जों अपने श्रम का कम से कम दाम लेकर अधिक काम करें।

परिणामतः बेकारोंकी संख्या बढ गई। जिनके पास न पैदावार के साधन थे न कोई का पा सकते थे, यह साधनहीन मजदूर पूँजीवादी श्रेणी के विरुध्द खडे हुऐ। लेकिन यह व्यवस्था प्रारंभ हुई थी व्यक्तिगत स्वतंत्रता से अपना मुनाफा कमाने और अपने श्रम की कीमत लेने का अधिकार के न्यायपूर्ण सिध्दांत पर।

मार्क्स समाज को इसी रुपमें देखना चाहता हैंकि, 'प्रत्येक व्यक्ति के लिए विकास और उन्नतिका और जीविका निर्वाह का समान अवसर होना और प्रत्येक व्यक्ति को अपने परिश्रम के फलपर समान रुप से अधिकार होना।' ।

उसकी चौथी अवस्था साम्यवादी अवस्थामें प्रवेश कर लेने से प्राप्त होती है। इसके प्रथम सोपान को समाजवादी समाज रचना कहते हैं। मार्क्सवाद के अनुसार समाजवादमें समता का यहीं आदर्श है - प्रत्येक को अपने विकास और उन्नति का तथा जीवन निर्वाह के उपायों की प्राप्ती के लिये समान अवसर

---

1. डॉ. भक्तराम शर्मा - मार्क्सवाद और हिन्दी कविता - पृष्ठ 24

हो और समाज के शासन और व्यवस्थामें भाग लेकर स्वयं निर्णय करने का समान अधिकार हो।

इसमें परिस्थितियों से उत्पन्न होनेवाली असमानता को जहाँ तक संभव हो वहाँ तक दूर करने के बाद समाज के संगठन का सिध्दांत होगा - प्रत्येक मनुष्य अपने सामर्थ्यपर परिश्रम करें, प्रत्येक मनुष्यको आवश्यकताओं के अनुसार पदार्थ मिले। परंतु इसके लिए आवश्यक हैंकि पहले औद्योगिक विकास द्वारा समाज की उत्पादक शक्ति को समाज के सभी व्यक्तियों की आवश्यकता पूर्ति के योग्य बना लिया जाय। विकास के साधन और अवसर समान रुपसे मिलकर व्यक्तियोंमें चली आई परंपरागत विषमता दूर होगी।

'इसप्रकार द्वंद्वात्मक भौतिकवाद का अर्थ हुआ दो शक्तियों के पारस्परिक द्वंद्व से भौतिक जगत का विकास। इस सिध्दांत का प्रयोग कर के ही मार्क्स ने इतिहास की आर्थिक व्याख्या के सिध्दांत का निरुपण किया। हीगेल अध्यात्म तत्वमें विश्वास रखता है तो मार्क्स भौतिकवाद का उपासक है। पहला इतिहास की दार्शनिक व्याख्या करता है तो दूसरा आर्थिक व्याख्या करता है। ऐतिहासिक भौतिकवाद मानव और समाज की एक विशिष्ट व्याख्या करने का प्रयास करता है। इसके अनुसार मानव का सामाजिक जीवन उसकी आर्थिक, राजनीतिक और भौगोलिक परिस्थितियों द्वारा अनुशासित होता हैं। 1

वर्गसंघर्ष की कल्पना -

मार्क्सवाद की आधार शिलाओंमें से वर्ग संघर्ष की नीति है और वह चेतना के सभी रुप वर्गहितों पर आश्रित होते हैं। वर्गविभाजन और वर्ग संघर्ष प्रगतिशील दृष्टि से आज के सामाजिक यथार्थ के मूलभूत सत्य हैं। 'मार्क्स के मतानुसार मानव समाज सदैव दो वर्गोंमें विभाजित रहा हैं। ये वर्ग है साधन संपन्न तथा साधन-विहीन लोग।' 2 प्रारंभमें भूस्वामी और दास, सामंतवादी युगमें गुलामी की प्रथा थी।

प्रथम शोषक राज्यदास-राज्य था। इसमें राजतंत्र गणराज्य, कुलीन तंत्र आदि कई प्रकार की सरकारे थी। इन भेदों के बावजूद दास युग का राज्य दास-स्वामियों का राज्य था। इसने स्वामियों के विरुध्द विद्रोह करनेवाले दासों को शस्त्र बल से कुचल डाला।

दास युगके बाद सामंती राज्य आया, जिसमें सरकार का सबसे अधिक प्रचलित स्वरुप राजतंत्र था। इसमें भू-दासों और दस्तकारों के दमन का यंत्र बना रहा। इसप्रकार इस युगमें भी समाजमें शोषक और शोषित वर्ग मौजूद थे।

---

1. डॉ. भक्तराम शर्मा - मार्क्सवाद और हिन्दी कविता - पृष्ठ 26
2. डॉ. भक्तराम शर्मा - मार्क्सवाद और हिन्दी कविता - पृष्ठ 27

पूँजीवादी राज्यमें पूँजीपति तानाशाही का उपयोग करते थे। पूँजीपतियों की अबाध सत्ता उनके राज्य के प्रत्येक रुप की विशेषता हैं। 'पूँजीवादी राज्य जनतंत्र का जामा ओढकर चलना पसंद करता था। पर वह यंत्र या श्रमिकोंको दबाकर रखने का। और उसका उद्देशं है पूँजीवादी संपत्तिकी रक्षा करना, मजदूरी की प्रथा को स्थिर रखना और सर्वहारा के क्रांतिकारी आंदोलन को नष्ट करना हैं।' 1 परिणामतः पूँजीपति वर्ग धनिक होता चला और मजदूर वर्ग निर्धन। मार्क्स के अनुसार शोषणपर आधारित पूँजीवादी व्यवस्थं शीर्ष समाप्त होगी क्योंकि एक ओर द्वंद्ववाद का नियम इसे अंदर से खोखला कर रहा है। दूसरी ओर श्रमिकों का असंतोष जागृति एवं संगठन इस पर प्रहार करने के लिए तत्पर रहे है।

भारतमें औद्योगिक विकास होने से देश के आर्थिक संगठनमें दृढता तथा एकरुपता आ गई। बड़े शहरोंका विकास हुआ, प्रगतिशील चेतना का प्रसार होने लगा। इसीसे समाज दो बड़ी शक्तियों के विरुध्द संघर्ष की भावना तीव्र हो गई। जनता समाजवाद के ओर झुकने लगी।

मजदूर वर्गमें संघर्ष का कारण था उनकी धनहिनता और हीन-दीन दशा। न उन्हें पर्याप्त मजूरी मिलती, न रहने के लिए कोई घर था। सन 1928 में ब्रिटीश ट्रेड युनियन कॉंग्रेस के एक प्रतिनिधि मंडल ने भारत के मजदूरों की हालत की एक रिपोर्ट प्रस्तुत की - यहाँ के मजदूरों को रोजना 1 शिलिंग से ज्यादा मजूरी नहीं मिलती, हम लोग मजदूर बस्तियोंमें गये और अगर वहाँ न जाते तो कभी यकीन न होता ऐसी गंदी जगह दुनियामें है, एक गलीमें कोठरी बनी है, कोठरी से बाहर एक तंग गली है, जिसमें सभी तरह की गंदगी बहा करती हैं।' 2

परिणाम स्वरुप मजदूरों के हृदयमें असंतोष और विद्रोह की भावना ज्वलंत होने लगी। लेनिन ने तो जब तिलकजी की गिरफ्तारी हुई और मजदूरों की हड़ताल हुई, उसे देखकर कहा था कि, हिंदुस्थान का श्रमिक वर्ग इतना तैयार हो गया है कि, सचेतन रुपसे राजनीतिक जनसंघर्ष का प्रतिनिधित्व कर सके।' 3

सन 1920 में मजदूरों की एक प्रतिनिधी संस्था 'अखिल भारतीय ट्रेड युनियन कॉंग्रेस' का जन्म हुआ। भारत के राजनीतिक क्षितिजमें श्रमिक सर्वहारा वर्ग का महत्त्व मंजिल-दर-मंजिल बढता गया।

---

1. डॉ. भक्तराम शर्मा - मार्क्सवाद और हिन्दी कविता - पृष्ठ 29
2. डॉ. दुर्गाप्रसाद झाला - प्रगतिशील हिन्दी कविता - पृष्ठ 28
3. डॉ. दुर्गाप्रसाद झाला - प्रगतिशील हिन्दी कविता - पृष्ठ 29

किसानोंमें वर्गचेतना -

मजदूरों की तरह किसानोंमें भी संघर्षमयी वर्ग चेतना धीरे-धीरे विकसित हुई। अंग्रेजोंने भारतमें आकर भूमिपर सामूहिक अधिकार की पध्दति बदलकर वैयक्तिक अधिकार की वस्तु बनायी। लेकिन ये सब कार्य अपने स्वार्थ के लिए उन्होंने किया था। पुरानी अर्थव्यवस्था का नष्ट-भ्रष्ट कर दिया लेकिन नवीन अर्थव्यवस्था का नाम तक नहीं लिया। मार्क्स का मत था कि, ब्रिटीशोंने ध्वंसात्मक कार्य बडी तेजीसे किया लेकिन पुर्नरचनात्मक भूमिका की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया, भारतीय सामज के पूरे ढाँचे को तोड़ डाला। पुरानी दुनिया का इस तरह बिछुड़ जाना और नई दुनिया का कहीं पता न लगना इससे हिंदुस्थानियों के वर्तमान दुःखोंपर एक विशेष प्रकार की उदासी की परत चढ जाती है। ब्रिटीश के शासन के नीचे हिंदुस्थान अपनी सारी प्राचीन परंपराओं और पराने इतिहास से कट जाता हैं।[1] ।

जमीन को वैयक्तिक अधिकार की वस्तु बना देने से ग्रामीण उद्योग-व्यवसाय नष्ट हो गये। औद्योगिक विकास की गति धीमी हो गई। केवल खेती ही जिनकी उपजीविका के साधन है ऐसे किसानों की स्थिति दयनीय होती गई।

किसानों पर गरीबी और कर्ज का बोझ बढानेवाले अन्य मुख्य कारणोंमें अंग्रेजों द्वारा प्रसारित की गई नई लगान पध्दति और जमींदारी प्रथा थे। गौण कारणोंमें अतिवृष्टि, सूखा तथा मुकदमेबाजी का क्रमिक चक्र था।

धनहिनता ओर कर्ज के बोझ ने किसानोंमें असंतोषजन्य क्रांति चेतना का प्रसार हुआ। राष्ट्रीय आंदोलनोंमें भी किसानों ने भी क्रांतिकारी भूमिका अदा कीं। सन 1915 के चंपारन सत्याग्रह और 1920 के बारडोली सत्याग्रहमें किसानोंने वीरता का प्रदर्शन किया। यह उनकी जागृत क्रांती चेतना का ही द्योतक था।

सन 1930 के पश्चात किसान समाओं का संगठन का कार्य शुरु हुआ। 1931 में किसानों के एक 'अखिल भारतीय किसान सभा' की स्थापना हुई जिसके द्वारा जमींदारी प्रथा की समाप्ति की माँग की गई। 1940 में इस सभाद्वारा एक प्रस्ताव पास हुआ, उससे किसानोंमें बढती हुई वर्ग-चेतना का आभास होता है - उसमें कहा था - सभा का विश्वास हैंकि किसानों का हित दुनियामें शांति कायम रहनेमें हैं, इसलिये किसान आजादी की लडाईमें मजदूरों के साथ आग बढ़कर विदेशी सरकार से लोहा लेंगे और

---

1. डॉ. दुर्गाप्रसाद झाला - प्रगतिशील हिन्दी कविता - पृष्ठ 30

देश के साधनों को लुटनेसे बचाएंगे। उस उद्देश से किसानों को तुरंत अपनी आये दिन की लडाई शुरु करनी और बढानी चाहिए। यह लडाई ब्रिटीश सरकार के अलावा देशी राजाओं, जमींदारों, और साहूकारों के खिलाफ भी होगी जो इस अंग्रेजी राज्य के मुख्य स्तंभ हैं। 1

कार्ल मार्क्स के सिध्दांत का प्रतिफलन -

संसार के प्रभावशाली विचारधाराओंमें मार्क्सवादी विचारधारा अधिक शक्तिशाली व स्थायित्व लेकर आयी। जिसने समस्त मानवता को किसी न किसी स्तरपर आंदोलित किया। इस विचारधारा से विश्वमें एक नये परिवर्तन का सूत्रपात हुआ, शासन बदल गये, पूँजीवाद की जडे हिल गई तथा काल्पनिक वाद दफन होते चले, इस धारा के प्रभावसे कोई देश, साहित्य कला, संस्कृति प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकी। 'मार्क्सवाद' केवल राजनीति पक्ष को ही उजागर करता हो अथवा सर्वहारा वर्ग का ही प्रतिनिधित्व करता हो ऐसी बात नहीं है, अपितु दर्शन के क्षेत्रमें भी क्रांतिकारी विचार पैदा करता है।

मार्क्सवाद का संबंध दर्शनएवं राजनीति, समाज कला, साहित्य, आदि से घनिष्ठ संबंध हैं। मार्क्सवादी विचारधारा का अपना वैज्ञानिक दृष्टिकोण है, जो अंधकार से प्रकाश की ओर ले जानेमें सक्षम है। विश्व के अनेक महान राजनीतिज्ञ, साहित्यकार, विचारक, तत्वविवेचक मार्क्सवादी सिध्दांत हृदयसे स्वीकारते है। जवाहरलाल नेहरु का मार्क्सवाद के बारेमें मत था कि, जिस समय संसार के अन्य समस्त सिध्दांत अंधेरेमें भटक रहें थे, उस समय मार्क्सवाद ही ऐसा था जो परिस्थितियों की संतोषजनक व्याख्या करने और एक सच्चा समाधान प्रस्तुत करनेमें समर्थ हो सके।

मार्क्सवाद का जन्म वर्ग संघर्ष से हुआए एक ओर पूँजीवाद आर्थिक सत्ता के लिए उन्मद हो रहा था तो दूसरी ओर शोषित वर्ग के श्रम के मूल्य के लिए भी विवश होना पडता था। स्वतंत्र होते हुए भी गुलामीका जीवन व्यतित करना पड़ता था, ऐसी स्थितियोंमें क्रांतिका जन्म लेना स्वाभाविक था।

पूँजीवाद का अविर्भाव सर्वप्रथम युरोपीय देशोंमें विशेषकर इंग्लैंड, जर्मनी, फ्रान्स में हुआ था। फलतः पूँजीवादी से उत्पन्न होनेवाली विषमताओं के प्रतिक्रिया स्वरुप विभिन्न साम्यवादी विचारधाराओंका आरंभ भी युरोप के इन्हीं देशोंमें हुआ। आरंभमें मार्क्सवादी विचारधारा पश्चिमी देशों तक ही सीमित थी, परंतु सोवियत संघ की स्थापना विश्व इतिहास की एक ऐसी घटना थी जिसने समस्त संसार को मार्क्सवादकी ओर आकर्षित किया।

---

1. रामप्रसाद त्रिवेदी - प्रगतिवादी समीक्षा से उधृत - पृष्ठ 58

साम्यवादी आंदोलन का मूल आधार मार्क्सवादी चिंतन है। इसलिए साम्यवादी चेतना जीवन के सभी पक्षोंमें अभिव्यक्त हुई है -

वह निम्नलिखित शीर्षकों के अंतर्गत हम मार्क्सवादी सिध्दांतोंका प्रतिफलन देख सकते हैं -

अ) मार्क्सवादी चेतना की राजनीतिक जीवनमें अभिव्यक्ति

ब) मार्क्सवादी चेतना की सामाजिक जीवनमें अभिव्यक्ति

क) मार्क्सवादी चेतना का धर्मसंबंधी दृष्टिकोण

ड) मार्क्सवादी चेतना की आर्थिक जीवनमें अभिव्यक्ति

हिन्दी में प्रगतिशील आंदोलन की साहित्यिक पृष्ठभूमी -

भारतीय जनता के मुक्ति आंदोलन का प्रभाव हिंदी साहित्यपर, जिसे हम आधुनिक युग कहते हैं, उसके आरंभ सेही पडला शुरु हुआ था। इन प्रभावों से आए हुवे परिवर्तनों के कारण इस काल को आधुनिक युग कहा जाता हैं।

भारतेंदु युगमें देशभक्ति, परोपकार, मातृभाषा, प्रेम, समाजसुधार और पराधीनता के बंधनसे मुक्ति की इच्छा आदि उन दिनों की प्रगतिशील मनोवृत्ति के चिन्ह हैं।' ।

हिन्दी साहित्यमें सन 1936 के प्रारंभिक दिनोंमें ही जीवनमें व्याप्त असंतोषख संघर्ष के उन्मूलन को दृष्टिमें रखते हुए एक नवीन युग की स्थापना हुई। छायावादी युग की समाप्तिके पश्चात एक नयी सामाजिक चेतना को लिए हुए जिस काव्ययुग की प्रतिष्ठा हिंदी साहित्य के क्षेत्रमें हुई, उसके कृतित्व को प्रगतिवाद अथवा प्रगतिशील काव्य, प्रगतिशील साहित्य इन नामोंसे पुकारा जाता हैं। डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी के मतानुसार - 'इतिहास सभी क्षेत्रोंमें अपने को दुहरा लेता है, सिर्फ विचारोंके क्षेत्रमें नहीं लेकिन इतिहास हमारी मदद करता है। प्राचीन काल के मानवीय अनुभव हमारे साहित्यकारों के चित्त को विचलित और वाणी को मुखरित करते हैं। पर वे व्यक्ति साहित्यकार के विशेषता के रुपमें ही जी सकते हैं, और साहित्यकारों नें निश्चित रुपसे मानव की महिमा स्वकार कर ली है, अगला कदम सामूहिक मुक्ति का है या सब प्रकार के शोषण के मुक्तिका। अगली मानवीय सुस्कृति समता और सामुहिक भूमिपर खडी होगी और इतिहास के अनुभव इसी सिध्दिी से साधन बनकर कल्याणकर और जीवनप्रद रहते हैं। इसप्रकार हमारी चित्तगत उन्मुक्ततापर एक नया अंकुश और बैठ रहा हैं। व्यक्ति

---

1. डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी - हिन्दी साहित्य उद्भव और विकास - पृष्ठ 286

BARR. BALASAHEB KHARDEKAR LIBRARY
SHIVAJI UNIVERSITY ...

मानव के स्थानपर समष्टी मानव का प्राधान्य। परंतु साथ हीं उसने मनुष्य को व्यापक आदर्श के साथ और अधिक प्रभावोत्पादक उत्साह दिया है। जब जब ऐसे बडे आदर्श के साथ योग होता है तब तब साहित्य नये काव्यरुपों की उद्भावना करता है। इसी नवीन आदर्श से चलित साहित्य का नाम प्रगतिशील साहित्य हैं।' 1

राजभक्ति के कारण युग के साहित्यमें देशभक्ति की भावना विकसित हो रही थी। देशमें आर्थिक, सामाजिक दूर्दशा से क्षोभ का स्वर चारो ओर फुट रहा था। और जीवन का यथार्थ साहित्यमें व्यक्त होने लगा। भारतेंदुकी पहेलियाँ, मुकरियों चूरन के लटकों आदिमें उस युग के यथार्थ के विभिन्न चित्र देख सकते है। इस युग का साहित्य जनता को सम्मुख रखकर लिखा गया था।

द्विवेदी युगमें राष्ट्रीयता, समाजसेवा और सामाजिक धार्मिक समस्याओं के तर्किक समाधान की प्रवृत्तियाँ मुखर हुई। जीवन के प्रति बौध्दिक दृष्टिकोण महत्वपूर्ण माना जाने लगा। गांधीवाद और आर्य समाज ने इस युग के साहित्य को प्रभावित किया। दोनों आंदोलन के प्रगतिशील तत्व इस युग के साहित्यमें व्यक्त हुए। साहित्य का उद्देश क्या है? और साहित्य की सामाजिक उपयोगिता इन प्रश्नोंपर जोर दिया गया। भारतीय जनता के दलित वर्ग किसान साहित्यमें व्यक्त हुए। मैथिलीशरण गुप्तजी के काव्यमें हिन्दू नवजागरण अपने व्यापक रुपमें अभिव्यक्त हुआ और उसने प्रगतिशील आंदोलन की पृष्ठभूमि तैयार करनेमें योग दिया।

इस युग के एक निबंधकार पूर्णसिंह के निबंधों में प्रगतिशीलता दिखाई देती है। उनका 'मजदूरी और प्रेम' निबंध इस दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। इसमें वे कहते हैकि - जब तक जीवन के अरण्यमें पादरी, मौलवी, पंडित साधु हल कुदाल और खुरपा लेकर मजदूरी न करेंगे तब तक उनका मन और उनकी बुध्दि युगों युगों तक मलिन मानसिक जुआ खेलती ही रहेगी। उनका चिंतन बासी, उनका ध्यान, पुस्तके, विश्वास, खुदा सब बासी हो गये हैं। एकान्त-द्रष्टा की तरह वे विश्व साहित्यमें आनेवाले भावी प्रगतिशील आंदोलन की भी पूर्व कल्पना कर लेते हैं। नया नया साहित्य मजदूरों के हृदय से निकलेगा। उन मजदूरों के कंठ से नई कविता निकलेगी जो खेतों की मेडों, कपडे के तागों का, जूते के टाकोंका, लकडी की रंगों का और पत्थर की नसों का भेदभाव दूर करेंगे।' 2

प्रगतिशील कविता के आरंभिक कवियोंमें पंत और निराला स्वयं छायावादी थे। उसी तरह

---

1. डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी - हिन्दी साहित्य उद्भव और विकास - पृष्ठ 286

शुक्लजी और प्रेमचंदजी के साहित्यमें भावी प्रगतिशील साहित्य के सर्वाधिक बीज मिलते है। शुक्लजी का साहित्य विषयक दृष्टिकोण प्रगतिशील था। अपने निबंध 'लोकमंगलजी की साधनावस्था' में वे कविता को जीवन के केवल कोमल और सुंदर पक्षतक सीमित कर देनेवाली का विरोध करते है, और हिंसा की भीषणतामें भी सौंदर्य देखते है। शुक्लजी उन सभी सिध्दातों का विरोध करते है जो जीवन के किसी एक अंग को महत्त्व देते हैं। उनके मतानुसार मानव शरीर के जैसे दक्षिण और वाम दो पक्ष है उसी तरह उसके हृदय के भी कठोर और कोमल दोनों पक्ष हैं। काव्यकला का पूरा सौंदर्य तभी व्यक्त होगा जब इन दोनों पक्षों के समन्वय के बीच से मंगल या सौंदर्य का विधान करें।' 1

प्रगतिशील आंदोलन का केंद्रबिंदू साहित्य और समाज का घनिष्ठ संबंध का ठोस प्रतिपादन शुक्लजीने प्रथम किया। संसार के प्रति उनका दृष्टिकोण भौतिकवादी था। प्रेमचंद का साहित्य भारत के विकासमान राष्ट्रीय आंदोलन और 19 वी सदीमें युरोपमें फलफुले मानवतावाद का प्रतिबिंब हैं।

साहित्य की प्रगतिशील धारामें साहित्य के सामाजिक प्रयोजनपर सर्वाधिक जोर दिया गया। प्रगतिशील समीक्षकोंके मत हैंकि, साहित्य सामाजिक जीवन की ही उद्‌भूति है, इसलिए वह अपने सामाजिक दायित्वसे भी मुक्त नहीं हो सकता।' 2 काडवेल का कला की व्युत्पत्ति संबंधी मत था कि, - कला समाजरुपी सीपी से उत्पन्न मोती के दाने की भाँति हैं।

इसप्रकार 1935 तक आते आते हिन्दी क्षेत्र की साहित्यिक परिस्थितियाँ भी प्रगतिशील आंदोलन के जन्म के अनुकुल हो चली थी।

हिन्दी की प्रगतिशील कविता का विकास -

हिन्दी कवितामें प्रगतिशील आंदोलन की निश्चित तिथि के बारेमें मतभेद है। श्री नामवरसिंह, ललित अवस्थी उसका प्रारंभ 1930 से मानते है। श्री अवस्थी के नुसार इसका आरंभकर्ता साम्यवादी नहीं गैर साम्यवादी हैं। लेकिन 1930 में बालकृष्ण शर्मा, पंत, निराला, आदिने सामाजिक यथार्थ, रुस की समाजवादी क्रांति का अभिनंदन, साम्यवाद का स्वागत अध्यात्मवाद के विरुध्द मानवतावाद की महत्ता आदि विषयोंपर काव्य रचना आरंभ कर दी थी।

लेकिन किसी साहित्य युग के आरंभ का निर्धारण केवल साहित्यिक आधारोंपर नहीं हो सकता।

---

1. डॉ. रणजीत - हिन्दी की प्रगतिशील कविता - पृष्ठ 136
2. डॉ. रणजीत - हिन्दी की प्रगतिशील कविता - पृष्ठ 76

उसके लिए समसामयिक, सामाजिक, राजनीतिक इतिहास पर भी ध्यान देना आवश्यक हैं। इसी दृष्टिसे 1936 का वर्ष हिन्दी साहित्य के इतिहास का ही नहीं भारत के राष्ट्रीय इतिहास का भी मोड़-बिंदू सिध्द होता हैं। राजनीति की क्षेत्रमें 1936 में जिन घटनाओं के कारण एक मोड़ बिंदू होने का श्रेय दिया जा सकता है, उसमें कॉंग्रेस का लखनऊ अधिवेशन, अखिल भारतीय ट्रेड युनियन, कॉंग्रेस का बंबई अधिवेशन, अखिल भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ का अधिवेशन आदि।

हिन्दी की प्रगतिशील कविता के सम्यक अध्ययन के लिए हम इतिहास को तीन युगोंमें विभाजित किया हैं। ये तीन युग वास्तवमें प्रगतिशील कविता के विकास की तीन निश्चित अवस्थाएँ है, जिनमेंसे से होकर प्रगतिशील कविता गुजरी हैं। 1) प्रथम चरण 2) द्वितीय चरण 3) तृतीय चरण

1. प्रथम चरण -

इसमें प्रगतिशील आंदोलन का प्रारंभ से स्वराज्य प्राप्ति तक का युग हैं। इस युगमें भारतीय जनता 'राष्ट्रीय स्वाधीनता' के लिए संघर्ष कर रही थी। इसीलिए इस युग की प्रगतिशील कविता का मूल स्वर राष्ट्रीय और साम्राज्यवाद विरोधी हैं। इसी कारण से इस युगमें हिंन्दी कविता की राष्ट्रीय धारा और प्रगतिशील धार एक दूसरे से निकट रही। राष्ट्रीय धारा के अनेक कवियोंने प्रगतिशील कविताएँ लिखी और प्रगतिशील कवियोंकी कविताएँ राष्ट्रीय भावनाओं से भरी रही। इसमें दिनकर और नवीन प्रमुख कवि है।

बालकृष्ण शर्मा : नवीन

'इस सूखे अग जग मरुथलमें, ढरक बहो मेरे रस-निर्झर
अपनी मधुर अमियधारा से, प्लावित कर दो सकल चराचर।' 1

रामधारीसिंह दिनकर

'श्वानों को मिलता दूध वस्त्र, भूखे बालक अकुलाते हैं
माँ की हड्डीसे चिपक ठिकुर, जाडे की रात बिताते हैं
युवती की लज्जा वसन बेच जब ब्याज चुकाये जाते हैं
मालिक जब तेल फुलेलों पर पानी सा द्रव्य बहाते हैं
पापी महलों का अहंकार, देता मुझको तब आमंत्रण।' 2

इस युगमें ऐसी भी कविताएँ लिखी गयी जिसका प्रगतिशील आंदोलन से कोई संबंध नहीं था। इस कविके प्रवृत्तियाँ भी विध्वंसवाद, अराजकतावाद, कुत्सित यथार्थवाद, यौनवाद आदि। इसके बाद के

---

1. डॉ. सुरेशचंद्र निर्मल - आधुनिक हिन्दी काव्य और कवि से उधृत - पृ 172
2. डॉ. सुरेशचंद्र निर्मल - आधुनिक हिन्दी काव्य और कवि से उधृत - पृ 186

प्रगतिशील कविता ने स्वीकार नहीं किया। क्योंकि यह कवि मध्यम वर्ग से आये थे और भावुक संवेदनाशील थे। चिंतन की दृष्टि से इस युगमें पंतजी की कविताओंमें परिपक्वता दिखाई देती हैं। लेकिन फिर भी इस युगमें विविध कविताएँ लिखी गयी।

2. दूसरा चरण -

इस युग के दूसरे चरण, द्वितीय महायुध्द काल की प्रगतिशील कविताओंमें फासिस्ट विरोधी प्रवृत्तियाँ मुखर हुई है। यहाँसे प्रगतिशील कविताओंमें आंतरराष्ट्रीय बोध की परंपरा प्रारंभ होती है। इस युगमें प्रकाशित प्रगतिशील कविता के प्रमुख संकलनोंमें निराला के कुकुरमुत्ता, अणिमा, बेला और नए पत्ते, पंत के युगान्त, युगवाणी, ग्राम्या, दिनकर की - रेणुका, हुंकार, सामधेनी, कुरुक्षेत्र, सुमन- हिल्लोल, जीवन के गान, प्रलय सृजन, अंचल- किरण, बेला, करील, नरेंद्र शर्मा - लाल निशान, प्रभात फेरी, हंसमाला आदि।[1] ।

इस युगमें प्रगतिशील आंदोलन साम्यवादी दल का प्रभाव पडा। इस युगमें नयी बनी राष्ट्रीय सरकार ने अंग्रेज अमेरिकी पूँजीवाद पर बहुत अधिक निर्भर होने के कारण, जनवादी आंदोलन को, स्वतंत्रता को अंतिम ध्येय न माननेवाले को भीषण दमन से कुचलने के प्रयत्न किये गये और उसे अधिक कटु क्रांतिकारी कट्टर बना दिया। तेलंगना का किसान विद्रोह इस युग की प्रमुख घटना हैं। कॉंग्रेस शासन के प्रारंभिक वर्षोंमें जन आंदोलन खासकर मजदूर किसान आंदोलन चरम सीमापर पहुँच गया।

अखिल भारतीय ट्रेड युनियन कॉंग्रेस के अनुसार 1946 में करीब पच्चीस हजार मजदूर किसान प्रतिनिधि जेलमें बंद थे। प्रगतिशील कवि भी इससे प्रभावित हुआ। उन्होंने राष्ट्रीय स्वाधीनता स्वीकार इस आशासे किया कि, अन्य शोषित वर्गोंके साथ साथ लेखकों की स्वाधीनता और सांस्कृतिक निर्माण का एक युग प्रारंभ होगा। पर जब नयी सरकार पूँजीवादी नितियों नुसार चलने लगा तब कवियोंमें लेखकोंमें कटुता की भावना बढने लगी। सरकारने जनआंदोलन के साथ साथ सांस्कृतिक आंदोलन को दबाना चाहा। और बिना वारंट गिरफ्तारियों, बिनामुकदमा नजरबंदियों, रचनाओंपर प्रतिबंध लगाया गया।

परिणामस्वरुप इस युग की कविताओंमें क्रांतिकारी स्वर और दृढता का स्वर मिलता हैं। इस युगकी कविताओंमें केदार की युग की गंगा, शैलेंद्र की न्यौता चुनौती, तथा नागार्जुन और रामविलास शर्मा की अधिकतर व्यंग कविता आती हैं। युगधारामें नागार्जुन लिखते हैं -

---

1. डॉ. रणजीत - हिन्दी की प्रगतिशील कविता - पृष्ठ 15।

'भारतमाता के गालों पर कसकर पड़ा तमाचा हैं
रामराज्य में अब की रावन नंगा होकर नाच रहा हैं।' 1

सामाजिक यथार्थ के कुछ प्रभावशाली चित्र दूसरे चरणमें खींचे गये और व्यंगपरक रचनाएँ लिखी गयी।

तीसरा चरण -

प्रगतिशील कविता का तीसरा युग शुरु होता है जब राष्ट्रीय सरकार की विदेशी नीति और देशी विचारोंमें परिवर्तन आता है। उस समय साम्राज्यवाद विरोधी नीति अपनायी गयी। राजबंदियों को छोड दिया गया। जनवादी संगठनों के प्रतिबंध हटाये गये। बालिग मताधिकार के आधार पर 1952 में पहला चुनाव हुआ। भारत की विदेश नीतिमें बदल हुआ। सोवियत संघ और चीन के साथ सरकार के मैत्रीपूर्ण संबंध स्थापित हो गये।

इन सभी बातोंका प्रभाव कवियोंपर पड़ा। अखिल भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ का पाँचवा अधिवेशन जो दिल्लीमें हुआ उसमें आंदोलन को व्यापक एवं उदार स्वरुप देने का प्रयत्न किया गया।

परिणामतः हिंन्दी कवितोने एक मानवतावादी अवस्थामें प्रवेश किया। क्रांति की भावना, एकता, विश्व शांतिकी उत्कट आकांक्षा उदार मानववाद का स्वर कवितामें व्यक्त होने लगा। इस युगमें कवितामें जीवन का उसकी जटिलता, समग्रता के साथ चित्रित करने की प्रवृत्ति बढ़ी।

इस युगके अंतर्गत नागार्जून की सतरंगे पंखोंवाली, प्यासी पथराई आँखे, केदार के लोक अलोक, फूल नहीं रंग बोलते है, सुमन के विश्वास बढता ही गया, पर आँख नही भरी, विंध्य-हिमालय, नीरज के प्राणगीत, दर्द दिया है, मुक्तिबोध का चाँद का मुँह टेढ़ा हैं, आदि कविताएँ लिखी गयी।

इसी तरह इस युग की प्रगतिशील कविता स्वच्छंदतावादी और प्रयोगवादी कविता के कुछ महत्वपूर्ण तत्वों को अपने भीतर समेटती हुई आगे बढ़ी।

'फूट कर धीरे धीरे उठ रहा मुक्ति का कमल वह
लिखेगा जो एक दिन काले जल पर
नव अरुणाभा में नव सतयुग के प्रकाश में।' 2

---

1. हरिचरण शर्मा - नये प्रतिनिधि कवि - पृष्ठ 20
2. दुर्गाप्रसाद झाला - प्रगतिशील हिंदी कविता - पृष्ठ 117

ये सभी कवि भूतकाल, भविष्य और वर्तमान को एक कालप्रवाह के रुपमें देखते है और परिणामस्वरुप उसे आज की कुरुपताओं एवं विद्रूपताओंमें से भविष्यमें नवीन मानवता का चमकता चेहरा दिखाई देता हैं।

'अंधकार का निराकार भुतहा सूनापन गहरा गहरा
चीर किरण की उँगली से वह तेजपुंज उषा मस्तक में
नया दमकता हुआ सूर्य या नूतन मानवता का चेहरा।' ।

अपनी रचनाओं का निर्माण करते समय व्याकरणिक तत्वोंका ध्यान नहीं रखता लेकिन इसका यह अर्थ भी नहीं की वे कला विरोधी हैं। उन्होंने तो अन्यत्र शिल्प तत्व की ओर भी ध्यान आकर्षितकिया है और काव्य को कलात्मक बनाने की आवश्यकता प्रतिपादन किया हैं।

निष्कर्ष रुपमें यह कहा जा सकता हैं कि, प्रगतिशील कविता अपने समग्र और मूल रुपमें जीवनोन्मुख रही हैं। उसने जीवन को वास्तविक रुपमें व्यक्त करना ही अपना उत्तरदायित्व माना। और उसे अच्छी तरहसे निभाकर परंपरा की सुकुचित सीमाओं को तोड़कर, व्यक्ति, समाज, ग्राम, नगर, संस्कृति, प्रकृति, जनपद, राष्ट्र विश्व, बुध्दि भावना, यथार्थ और कल्पना के सुंदर रुपको अपने कविता में व्यक्त किया हैं।

प्रगतिशील अधिवेशन -

'समाज को -हास तथा सामूहिक अस्ताव्यस्तता के बीच से समाज तथा साहित्य को नई, स्वस्थ, प्रशस्त दिशा देना था। यह समस्या केवल भारत देश की ही नहीं थी, ऐसी कटु तथा विषाक्त परिस्थितियों के दौर से तत्कालीन युरोपीय मानस भी गुजर रहा था। यही सोचकर युरोप के सजग विचारकों ने 1935 में 'प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना की।' 2

'प्रगतिशील लेखक संघ' नामक संस्था का प्रथम अधिवेशन पेरिसमें हुआ। प्रसिध्द अंग्रेजी उपन्यासकार ई.एम. फार्स्टर इसके सभापति थे। इस संस्था के ध्येयसे प्रेरित होकर डॉ. मुल्कराज आनंद, सज्जाद जहीर, भवानी भट्टाचार्य जैसे कुछ भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ की नींव रखी। और वहीसे अपने भारतीय मित्रों के पास एक परिपत्र भेजा, जिसमें संस्था और उसके उद्देशों की विस्तृत चर्चा लिखी थी, उसका अंश इसप्रकार -

---

1. मुक्तिबोध - मानवता का चेहरा - पृष्ठ 53
2. डॉ. भक्तराम शर्मा - मार्क्सवाद और हिन्दी कविता - पृष्ठ 12

'भारतीय समाज में बड़े बड़े परिवर्तन हो रहें हैं। पुराने विचारों और विश्वासों की जडे हिलती जा रही हैं कि वे भारतीय समाजमें निर्माण होनेवाली क्रांति को शब्द और रुप दे और राष्ट्र को उन्नति के मार्गपर चलानेमें सहायक हो। हम भारतीय सभ्यता की परंपराओं की रक्षा करते हुए अपने देश की पतनोन्मुख प्रवृत्तियों की बडी निर्दयतासे आलोचना करेंगे और आलोचनात्मक तथा रचनात्मक कृतियोंसे उन सभी बातों का संचय करेंगे। हमारी दरिद्रता, सामाजिक अवनति, राजनीतिक पराधिनता, क्रियात्मक शक्तिद्वारा इन समस्याओंको सुलझा सकेंगे।' 1

संस्था का प्रमुख उद्दीष्ट ये रहा कि, 'भारत के भिन्न-भिन्न भाषा-प्रांतोंमें लेखकों को संग्रहित करते हुए प्रगतिशील साहित्य की सृष्टि करना। इस परिपत्रक का सभी भाषाओं के लेखकोंने पूरी हार्दिकतासे स्वागत किया। प्रेमचंदजीने इसके उद्देश तथा योजनाओं को मान्यता देते हुए स्वतः साहित्यकारों को रचनात्मक उत्थानमें सहयोग देने का आग्रह किया।

सन 1936 में भारतीय प्रगतिशील लेखक संघका अधिवेशन लखनऊमें हुआ। जिसमें भारत के सभी भाषाओंके लेखक सम्मिलित हुए। इस संमेलन के अध्यक्ष मुंशी प्रेमचंद थे। अपूर्व आस्था तथं विश्वास के वातावरणमें इस नये साहित्यिक जागरण का स्वागत किया गया। अध्यक्षीय भाषणमें प्रेमचंदजी ने कहा 'आज हमारे साहित्यमें भक्ति वैराग्य की भरमार और भावूकता का प्रदर्शन हो रहा है, विचार और बुध्दि का एक प्रकारसे बहिष्कार कर दिया गया हैं। इस सभाका उद्देश अपने साहित्य और दूसरी कलाओं के पुजारियों, पंडितों और अप्रगतिशील वर्गों के अधिपत्य से निकलकर उन्हें जनता के निकटतम संसर्गमें लाना हैं। भारतीय सभ्यता की परंपराओं की रक्षा करते हुए अपने देश को विनाश की खाईमें ले जानेवाली प्रवृतियोंकी निर्दयता से आलोचना करेंगे।' 2

कल्पनावादी, व्यक्तिवादी काव्य और कला की प्रखरता से आलोचना करते हुए वे कहते हैं - हमारे लिए कविता के वे भाव निरर्थक है, जिसमें संसार की नश्वरता का अधिपत्य हमारे हृदयपर और दृढ हो जाए, उनसे हमारे हृदयोंपर नैराश्य छा जाए। हमें उस कला की आवश्यकता हैं, जिनके कर्म का संदेश हो। अतः हमारे पथमें अहंवाद अथवा अपने व्यक्तिगत दृष्टिकोण को प्रधानता देना वह वस्तु है जो हमें जडता, पतन और लापरवाही की ओर ले जाती है और ऐसी कला की आवश्यकता हमारे लिए व्यक्ति रुपमें उपयोगी है न समुदाय रुप में।' 3

---

1. डॉ. रणजीत - हिन्दी की प्रगतिशील कविता - पृष्ठ 140
2. शिवकुमार मिश्र - प्रगतिवाद - पृष्ठ 16
3. डॉ. रणजीत - हिन्दी की प्रगतिशील कविता - पृष्ठ 141

उन्होंने साहित्यकारोंको आलस्य, जड़ता, निष्क्रियता तथा परमुखापेक्षिता को छोड़कर नई स्फूर्ति तथा नए संकल्पोंसे युक्त होकर नए पथपर आगे बढ़ने का आव्हान किया।

भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ का दूसरा अधिवेशन सन 1938 में कलकत्ता के आशुतोष मेमोरिअल हॉल में हुआ। अधिवेशन के अध्यक्ष गुरुदेव रवींद्रनाथ टैगोर थे। उसकी घोषणा थी - देश सद्य सामाजिक, आर्थिक, साहित्यिक परिस्थितियोंका अभ्यास करें और सभी लेखक वर्ग से आग्रह किया की वे उनके प्रति पूर्ण सजग होकर साहित्य की सर्जना करें। इसके अलावा यह भी स्पष्ट किया कि, प्रगतिशील लेखकों के लिए कौनसी वस्तुएँ प्रगति अथवा प्रतिक्रिया सूचक हैं।

हर भारतीय लेखक का कर्तव्य हैंकि, वह देशमें होनेवाले परिवर्तन को वाणी दे और साहित्यमें पुराने विश्वासों को छोड़कर वैज्ञानिक बुध्दिवाद का समावेश करके देशमें क्रांति की भावना निर्माण करनेमें मदद करें। उनको साहित्य समीक्षा के ऐसे दृष्टिकोण का विकास करना चाहिए जो परिवार, धर्म, काम, युध्द और समाज के प्रश्नोंपर सामान्यतः प्रतिक्रियाशील तथा पुराणपंथी प्रवृत्तियोंका विरोध करें। जो प्रवृत्तियाँ जातिभेद, शोषण की भावना, सांप्रदायिकता को प्रतिबिंबित करती हो, उसका विरोध करना चाहिए।

संघ का उद्देश साहित्य तथा अन्य कलाओंको, जो रुढिवादियों के बीच निर्जिव होती जा रही है, उसे आजाद करना और उसे जनता के निकट लाकर जीवन के यथार्थ का अध्ययन और नये विश्व निर्माणमें सहायक शक्ति बनाना हैं।

जो हममें उदासीनता, निष्क्रियता तथा विवेकहीनता उत्पन्न करता हैं, उसे हम प्रतिक्रियाशील समझते हैं और उसका प्रतिवाद करते हैं, जो हममें एक आलोचक की सी वह स्वस्थ जिज्ञासा उत्पन्न करता है, जो संस्थाओं और प्रचलित रीति-रिवाजों को विवेक की रोशनीमें देखता है और हम अपने कार्यमें, अपने को संगठित करने में, परिवर्तन लानेमें सहायता पहुँचाता है उसे हम प्रगतिशील समझते हैं।

संघ इस द्वितीय अधिवेशनमें देश के लेखकों के बीच प्रगतिवादी चेतना का व्यापकता से प्रचार हुआ। पहले अधिवेशनमें चेतना निर्माण हुई और द्वितीयमें उसका प्रखर रुप सामने आ गया।

सन 1936 में दूसरा महायुध्द शुरु हुआ इसी कारण सभी देशोंके सामने फासिज्म का संकट उपस्थित हुआ। समस्त देशों के बुध्दिजीवी लोग इस संकट का मुकाबला करने के लिए एकत्रित हुए।

इसके कारण समस्त मानवता की श्रेष्ठ उपलब्धियों का नष्ट होने का धोका था। इस संकट का सामना करने की जिम्मेदारी प्रगतिशील लेखकों की जिम्मेदारी रहीं। यह संकट केवल भारत के लिए न था सभी देशोंको धोका था। इसीलिए अन्य देशों के विचारकों के साथ भारत के विचारकों ने भी इस चुनौती को स्वीकार किया।

प्रगतिशील लेखक संघका तीसरा अधिवेशन 1942 में दिल्ली में हुआ। उसका विषय था कि, फासिज्म के बढते कदम को रोकना। डॉ. अलीम के अध्यक्षतामें एक विशेष अधिवेशन हुआ। प्रगतिशील लेखकों के अतिरिक्त बहुतसे बुध्दिजीवियोंने इसमें भाग लिया। इस समय एक विशेष अपील भी की गई कि, जिसे भारत के विचारकोंमें से चुने हुए प्रतिनिधियों के हस्ताक्षरसहित, युरोपमें होनेवाले फासिस्ट विरोधी संमेलनमें, भारत के सहयोग तथा सद्भावना का विश्वास देते हुए भेजा गया।

चौथा अधिवेशन बंबईमें युध्दजन्य परिस्थितियोंमें हुआ। इसके अध्यक्ष श्रीपाद अमृत डांगे थे। इसमें युध्दद्वारा प्रस्तुत नई समस्याओंका परिचय कराया गया।

पाँचवा अधिवेशन 1953 में दिल्लीमें हुआ। इस संमेलन के घोषणापत्रमें प्रगतिशील आंदोलन को एक व्यापक आधार देने का प्रयत्न किया गया - 'हमारी जनता अपने लए स्वतंत्र और समृध्द जीवन बनाने के लिए प्रयास कर रही है, वह विश्व के सभी राष्ट्रों के साथ शांति और मैत्रीपूर्ण संबंध स्थापित करना चाहती हैं। हमें अपने साहित्यमें मानवतावादी भावना, जीवनमें आस्था और आलोकपूर्ण भविष्य को चित्रित करना हैं।' 1

प्रगतिशील लेखक संघके आगे भी उनके अधिवेशन हुए, जिनमें देशके साहित्यकारोंको प्रशिक्षण, उठनेवाले नये-नये प्रश्नों की बारीकी से जाँच करते हुए अपने सामाजिक तथा साहित्यिक उत्तरदायित्व के प्रति उन्हें जागृत किया जाता रहा। अखिल भारतीय स्तर के अतिरिक्त प्रांतीय तथा जिला स्तरपर भी संघ का अधिवेशन हुआ। इसमें साहित्य-निर्माण तथं उससे संबंधित अन्य प्रश्नोंपर उन्हें सतत जागरुक और क्रियाशील रहने की प्रेरणा दी गई।

---

1. डॉ. रणजीत - हिन्दी की प्रगतिशील कविता - पृष्ठ 144

नारी विषयक कल्पना :-

आज हमारा समाज तेजी से बदल रहा हैं और बुध्दिजीवी मनुष्य स्त्री-पुरुष संबंधोंपर दो दृष्टिकोण से विचार कर रहा हैं। इसके दो पहलु हैं, एक सामाजिक है, जिसके अनुसार स्त्री और पुरुष सामाजिक ईकाईयाँ है और दूसरा नैसर्गिक प्रवृत्ति जिसके अनुसार वे स्त्री पुरुष हैं।

वैयक्तिक संपत्ति की विकास ने समाज को वर्गोंमें विभाजित किया। इसके साथ ही विवाह संस्था उसके रीति-रिवाज, यौन आचार का निश्चित बंधन हुआ। इसके कारण मातृसत्ताक समाज के स्थानपर पितृसत्ताक समाज का उदय हुआ। जब जब समाजमें आर्थिक संबंध बदलते है, यौन आचार भी बदलते है।

आचारहीनता, नीतिहीनता को दूर करने के लिए पातिव्रत्य के नियम बने। इसमें संदेह नहीं समाज और सभ्यता के लिए ये नियम उन्नतकारी और आवश्यक थे। लेकिन इस नियम का पालन सिर्फ नारी ही करती रहीं और पुरुष स्वेच्छापूर्ती में मग्न रहा। पत्नी घरमें रहकर पातिव्रत्य धर्म को निभाती थी, पुरुष के लिए वह उसके संपत्तिके उत्तराधिकारी की माता थी। पुरुष चाहे जितनी शादियाँ कर सकता था, और उसके अलावा दासियाँ भी थी, जिसपर पत्नी के समान अधिकार जताता था। फिर भी प्रत्येक युगमें वेश्याएँ पितृसत्ताक समाज का एक अभिन्न अंग रहीं। तात्पर्य यह कि सभ्यता के विकास और नियमों के बावजूद पुरुष चारित्र्यहीनता के पथपर स्वच्छंदता से चलता रहा, और जिस आदिम जातियों में सभ्यता का विकास नहीं हुआ ऐसे समाजमें यौन आचार के कोई नियम नहीं हैं। अतएव नारी समस्या एक सामाजिक समस्या हैं।

भारत में नारी समस्या कुछ कम जटिल नहीं हैं। युरोप से भिन्न समस्या का रुप हमारे देशमें हैं। टैगोर शरद और प्रेमचंदने देश की वस्तुस्थिति को सामने रखते हुए समस्या का निराकरण करने का प्रयत्न किया, उन्होंनें जो नारी पात्र चित्रित किये है, उनके प्रति हमारे मनमें आदर की भावना उत्पन्न होती हैं। उसमें न्यायबुध्दि है और वे सामाजिक रुढिवाद और अन्याय के विरुध्द आवाज उठाती हैं। संघर्ष करती है, वीरता से कष्ट को सहती हैं।

'अब चूँकी पुरुष मर्यादा और आदर्श आदि के बहानों से स्त्रीपर अपनी हुकुमत चलाना चाहता था, इसलिये नए और प्रगतिशील लेखक ने मर्यादा और आदर्श को तोड़ना अपना कर्तव्य माना। विवाह प्रथाकी बंधन मानकर उसके खिलाफ विद्रोह किया।' 1

---

1. दुर्गाप्रसाद झाला - प्रगतिशील हिन्दी कविता - पृष्ठ 181

प्रगतिवादी कवियोंका ध्यान नारी की शोचनीय स्थिति की ओर आकर्षित हुआ। सामंती व्यवस्थामें नारी का महत्व उपभोग्य वस्तुसे अधिक नहीं रहा था। प्रगतिशील कवियों ने उसे योनि-मात्र माननेवालों का विरोध किया। पंतजी के प्रगतिवादी काव्यमें नारी संबंधी दृष्टि की अभिव्यक्ति विस्तार से की गयी है। ग्राम्या में पंत कहते है -

'योनि नहीं हैं रे नारी, वह भी मानवी प्रतिष्ठित,
उसे पूर्ण स्वाधीन करो, वह रहे न नरपर अवासित।' 1

प्रगतिवादी काव्यमें श्रमशीला नारी की गरिमा का चित्रण हैं। उसकी आदर्श नारी ठोस कार्य करनेवाली मजदूरनी हैं -

'निज बंधन खो, तुमने स्वतंत्रता की अर्जित
स्त्री नहीं आज मानवी बन गयी तुम निश्चित
जिसके प्रिय अंगो को छू अनिलासप पुलकित।' 2

यों भी स्त्री नहीं, वह माता, बहन, पत्नी आदि अनेक रिश्तोंसे समाज के साथ जुड़ी हुई हैं। भारत की सामान्य नारी बरसोंसे पति, परिवार और जनजीवन को आगे बढ़ाने के लिए संघर्ष करती आई हैं। भीषण संकटों का मुकाबला करती है, उसका कष्ट और श्रम वर्णनातित हैं।

भारतेंदु युगमें और द्विवेदी युगमें केवल नारी के धर्म स्थिति को सुधार चेतना का स्वर व्यक्त हुआ है, न उसकी विद्रोह एवं क्रांति चेतना की ही वाणी दे सका। उदा. मैथिलिशरण गुप्तजीने यशोधरा में स्वाभिमानी नारी को तो प्रस्तुत किया लेकिन मूलतः उसे अबला के रुपमें वर्णित किया -

'अबला जीवन हाय तुम्हारी कहानी
आँचल में हैं दूध और आँखो में पानी।' 3

इसीप्रकार छायावादी कवि ने अतिमानवीय या देवी का रुप दे दिया कहीं पर उसे स्वप्निल जीवन अप्सरा और प्राकृतिक छायाचित्रोंमें विलीन कर दिया। वह मानवी के रुपमें प्रतिष्ठित न हो सकी। प्रगतिशील कवि ने अचल नारी को गति भी प्रदान की और छायावाद की सूक्ष्म भावमयी एवं अमूर्त नारी को एक सजीव आकार दिया। उसने नारी को योनि मात्र के भूमिका से उपर उठाकर उसके मानवी तथा सह-धर्मी रुपमें प्रतिष्ठित किया। सामंतीय युगमें नारी का कोई मूल्य नहीं था। इसलिए उस युग का

---

1. सुमित्रानंद पंत - ग्राम्या - पृष्ठ 35
2. सुमित्रानंद पंत - ग्राम्या - पृष्ठ 84
3. मैथिलीशरण गुप्त - यशोधरा - पृष्ठ 69

पुरुष भ्रमर के समान केवल नारी के रुपशशिपर मँडरा रहा था। नारी की जादूभरी रुपयौवन का अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन करनेमें मग्न था।

लेकिन आज के प्रगतिशील कविने नारी के मानवी रुप के प्रति ऐसी चाटूकारी भरी बातों को अवहेलना का भाव ही माना। वह स्पष्ट स्वरमें कहता हैंकि,

'तुम नहीं हो भोग की ही वस्तु मुझको, अस्तु तुमसे,
भीख मधुकी माँगता मन भी नहीं
अलिज्यों कुसुम से
चाटुकारी से रिझाना हुई अवहेलना तुम्हारी,
सुनो नारी करुँ अभिनंदन, तुम्हारा मौन
अब बिन कहे तुमसे।' ।

प्रगतिशील कवि नारी की विशद स्त्रीत्व का मनमें पूजन करने लगा। इस कवियोंने नारी के केवल भोग्या और कामिनी रुप की अपेक्षा उसके मधुर मानवी रुप को महत्वपूर्ण माना। उसको दासी के रुप से अपदस्थ कर दिया। अब तो नारी जीवन संघर्षमें पुरुष को साथ कंधेसे कंधा मिलाकर उसकी सहचरी बन गई। स्त्री को पाशविक शक्ति के बंधनों की निंदा कर उसे प्यार के सुकुमार बंधनोंमें बांधने की कामना प्रकट की।

प्रगतिवादी कवियोंने नारी का भी अपने जैसा ही स्वतंत्र अस्तित्व माना और पारस्पारिक सम्मान करने की भावना व्यक्त की। उसने निःसंकोच स्वीकार किया कि नारी जीवन संघर्षमें पुरुष वर्ग से किसी भी प्रकार पीछे नहीं हैं।

'तो चलो, इस पंथपर हम साथ अपने पग बढाये
जिंदगी की राहपर हम कर्म की ये साधनाएँ
दीप सी रह रह जगाएँ।' 2

प्रगतिशील कवियोंने यद्यपि नारी के मानवी तथा सहचरी रुपकी घोषणा तो की, लेकिन यथार्थ जगतमें उस वर्ग की अधिकांश समस्याएँ उपेक्षित तथा शोषित बनी हुई थी। यह नारी पुरुष वर्ग की क्रूर वासना और अत्याचार का सदैव ग्रास बनती रहीं हैं। कभी धर्म और सतीत्व के नामपर उसे अपने जालिम पति की कैद में जीवन भर रहना पडता हैं। तथा कभी मजहब के नामपर उसपर नृशंसतापूर्ण पाशविक अत्याचार किये जाते हैं। अंत में कहीं भी आश्रय न पानेपर उसे वासना के गंदे कोठोंमें आकर शरण लेनी पडती हैं।

---

1. नरेंद्र शर्मा - एक नारी के प्रति - पृष्ठ 134
2. दुर्गाप्रसाद झाला - प्रगतिशील हिंदी कवि - पृष्ठ 123

प्रगतिशील कवियोंने नारी के इस शोषण के विरुध्द व्यग्र होकर विद्रोह की वाणी मुखरित की हैं। सुमित्रानंद पंत ने इस बंदिनी नारी की मुक्ति के लिए आग्रह के स्वर में लिखा -

'मुक्त करो नारी रे मानव
चिरबंदिनी नारी को
युग युग के बर्बर कारा से
जननि, सखि प्यारी को
छिन्न करों सब कोमल पाशं।
उसके कोमल तन मन के
वे आभूषण नहीं दाग
उसके बंदी जीवन के।' 1

नारी के पुरुष वर्गद्वारा शोषित रुप के अतिरिक्त प्रगतिशील कवि ने किसान, मजदूर, निम्न मध्यम वर्ग आदि शोषित पीड़ित वर्गों की नारियों की दैन्य-जर्जर अवस्था के भी अनेक चित्र अंकित किए हैं। पंतजी की ग्राम युवती तथा सुमन जी की 'मुनिया का यौवन' शीर्षक कविताएँ कृषक नारी के जर्जर रुप की व्यंजना करते हैं।

पंतजी ने 'ग्राम-युवती' के स्वरुप एवं आकर्षक यौवन का वर्णन करने के साथ ही जीवन की विषम परिस्थितियों के कारण उसके असमय ही ढ़ह जाने का वर्णन किया हैं।

'रे दो दिन का उसका जीवन
सपना छिन का रहता न स्मरण
दुःखो से पिस, दुर्दिन में पिस
जर्जर हो जाता उसका तन
ढह जाता असमय यौवन-धन
बह जाता तट का तिनका
जो लहरों से हँस खेला कुछ क्षण।' 2

निम्न मध्यवर्ग की नारी भी अभाव, विवशता और कुंठाओं का ही जीवन व्यतीत करती हैं। यद्यपि भारत वर्षमें आज भी अनेक नारियाँ दासता के अंधकूप में पडी हुई हे और उनके स्वाधीनता के लिए उनमें क्रांतिकी भावना को जागृत करने की आवश्यकता हैं।

---

1. सुमित्रानंदन पंत - नारी - पृष्ठ 58-59
2. सुमित्रानंदन पंत - ग्राम्या - पृष्ठ 19

डॉ. शिवमंगलसिंह सुमन ने अपने काव्यमें नारी के तरह तरह के रुप दिखायें हैं। हिल्लोल में नारी प्रेयसी के रुपमें और जीवन के गान में, प्रलय सृजन में अलग अलग रुप दिखाये हैं।

'सुमन' जी की कवितामें युवती के समाज में अनेक रुप हमारे सामने प्रस्तुत हो जाते हैं। कवि की प्रणयसंबंधी कविताओं में जो नारी प्रेयसी के रुपमें दिखाई देती हैं। वहीं नारी शोषित के रुपमें दिखाई पडती हैं। कवि ने शोषित पुरुषों के अतिरिक्त उनकी पत्नियों की दैन्य-जर्जर अवस्था का भी उल्लेख किया हैं।

कवि के नारी परक दृष्टिकोण को 'गुनिया का यौवन' के माध्यम से स्पष्ट रुप से जाना जा सकता हैं। वे प्रथम गुनिया का यौवन और चंचल नटखटाता का वर्णन करते है और बादमें परिस्थितियों के कारण जर्जर हुए उसके तन यौवन का वर्णन करते हैं। कवि सोचता हैंकि, विषमता के कारण उसके यौवन का भार उतर गया हैं।

वह कहते हैं -

'ढीला पीला अधखुला अंग
मुँह पर चिट्टे फैली झाँई
आँखे गड्ढों में धँसी और
सिकुडन-सी कहीं-कहीं छाई
अब दो बच्चों की माँ थी वह
था भार गृहस्थी का उसपर
अब रंग निरंगी दुनियासे
उसका मन नहीं जाता सिहर।' 1

बंगाल के अकाल से ग्रस्त विधवाओं और माताओं की दशापर सुमन जी कहते हैं -

'विधवाएँ चिल्लाती रोती
माताएँ जी खोल
कर्ण बधिर से करते होंगे
वे नारी के मोल
आह समझ सकता कोई यदि
इन आहों का अर्थ
निश्चय ही मातृत्व न जाता
कभी इस तरह व्यर्थ।' 2

---

1. डॉ. सुमन - प्रलयसृजन - पृष्ठ 27
2. डॉ. सुमन - प्रलयसृजन - पृष्ठ 78

इतिहास, पुराणोंमें कहीं जानेवाली अबला ममता की मूर्ति माँ की ऐसी दशा देखकर कवि सुमन का मन विषादमय हो उठता हैं। कवि का कथन हैंकि दया, माया, ममता की देवी की करुण पुकार को सुनना ही पडेगा। मातृत्व की महिमा को अंतर्गत खुशहाली लाने के लिए प्रत्येक मनुष्य को त्याग करना पडेगा।

प्रगतिवादी साहित्य की विशेषता -

प्रगतिवादी धारा की अपनी विशेषता रहीं हैं। प्रगतिवादी कवियोंके साहित्यमें ये विशेषताएँ दृष्टिगाचर होती है। प्रगतिवादी कवियोंने अपने काव्य के जो विषय बनाएँ वहीं प्रगतिवादी धारा की विशेषता हैं, उदा. शोषित जनता के प्रति सहानुभूति, पूँजीवाद, सामंतवाद का विरोध, तथा सामाजिक समस्या आदि। प्रथम अध्याय के इस भागमें हम प्रगतिवादी विशेषताओंका विवेचन प्रस्तुत करेंगे।

1. रुढियों का विरोध और नुतनता का पक्षधर
2. शोषित वर्ग से सहानुभूति
3. रुस मार्क्स और क्रांति का गुणगान
4. शोषकों के प्रति क्रोध
5. आर्थिक और सामाजिक चेतना
6. सामाजिक समस्याओं का विवेचन
7. आस्था और विश्वास का स्वर

1. रुढियों का विरोध और नुतनता का पक्षधर -

प्रगतिवादी कवि सभी प्रकार की रुढियों और परंपराओं का कट्टरता के साथ विरोध करता हैं। इसीसे परमार्थिकसता और अर्थात ईश्वर और धर्म को त्याज मान कर उनकी निंदा करता हैं, और उसके स्थानपर नूतन गतिशील दृष्टिकोण की स्थापना करता हैं। प्रगतिवादी कवि रुढ़ियों और परंपराओं को मानवता के विकास के मार्गमें सबसे बड़ी बाधा मानता हैं।

इन रुढ़ियोंके द्वारा निर्माण होनेवाली असमानता तथा विषमता मानवता को विभक्त कर देती हैं। 'तथापि सामाजिक क्षेत्रमें नूतन अविष्कारों के प्रयोग से अनेक रुढ़ियोंको नष्ट किया गया, किंतु समाजमें जाति-व्यवस्था संबंधी रुढ़ियाँ ज्यों कि त्यों रह गयी। समाजमें उँच-नीच का भेद खुलकर उभरा हुआ था, अस्पृश्यता की समस्या सारे देश की समस्या थी। इंडियन सोशल कान्फ्रेंस' के द्वारा दलित वर्ग की उन्नतिके लिए प्रयत्न किये गये।' 1

---

1. डॉ. अजितसिंह - प्रगतिवादी काव्य : उद्भव और विकास - पृष्ठ 46

प्रगतिवादी कवियोंने ईश्वर और धर्म को अमानवीय तथा प्रगति विरोधी तत्व के रुपमें देखा हैं। क्योंकि सामाजिक यथार्थ दृष्टि ने इस तथ्य का अनुभव किया है कि, विनाशरुपी शोषक शक्तियाँ प्राय: ईश्वर और धर्म की आड लेकर नवनिर्माण को पथभ्रष्ट करने का प्रयत्न करती रही।

ईश्वरवादी तत्व और धार्मिकता के तत्वने ही मनुष्य को संघर्ष से मुख मोडकर भाग्यवाद और पलायन करनेपर मजबूर किया। वस्तुतः प्रगतिशील कवि जब वर्तमान धर्म व्यवस्था के भीषण स्वरुप देखता है तो ईश्वर और धर्म के प्रति उसका विश्वास डगमगा जाता हैं -

'आज भी जन जन जिसे करबध्द होकर याद करते
नाम ले जिसका गुनाहों के लिए फरियाद करते
किन्तु मैं उसका घृणा की धूल से सत्कार करता
आज मैं विद्रोह का विद्रोह की हुंकार भरता।' 1

श्री केदारनाथ अग्रवाल ने तो क्षुब्ध होकर भगवान के सिरपर लोहा दे मारने तक का आग्रह प्रकट करते हैं। अपनी एक अन्य कवितामें जनता के भाग्यवादी स्वरुप की भर्त्सना कर रोटी के लिए स्वयं संघर्षरत होने का आव्हान करते है -

'रोटी तुमको राम न देगा
वेद तुम्हारा काम न देगा
जो रोटी के लिए लडेंगे
वह रोटी को आप वरेंगी।' 2

धर्म के प्रतिक्रियावादी एवं रुढ़िग्रस्त स्वरुप की निंदा कवियोंने की है इसके अलावा जातिभेद वर्णभेद के विरुध्द संघर्ष करने का आव्हान किया हैं।

डॉ. शिवमंगलसिंह सुमन जातिभेद के बारेमें कहते हैं -

'एक बीज में निहित असंख्य वन-वितान
एक बिंदू में विहित असंख्य सिंधु-गान
देश-जाति-धर्म-वर्ण बाँध-बाँध कर
एक ही हृदयमें विराट में प्रकंपमान।' 3

---

1. दुर्गाप्रसाद झाला - प्रगतिशील हिंदी कविता से उध्दृत - पृष्ठ 185
2. दुर्गाप्रसाद झाला - प्रगतिशील हिंदी कविता से उध्दृत - पृष्ठ 131
3. डॉ. सुमन - विश्वास बढता ही गया - पृष्ठ 9

2. **शोषित वर्ग से सहानुभूति -**

शोषित वर्गमें मजदूर, किसान, निम्न, मध्यवर्ग को प्रमुख रुप से लिया जा सकता हैं। प्रगतिशील कवियोंने मजदूर वर्ग को विशेष आदर का स्थान प्रदान किया हैं।

शोषितों के प्रति सहानुभूति रखना 'सुमन' जी का प्रधान स्वर हैं। अपना प्रथम काव्यसंग्रह 'हिल्लोल' में कहते हैं -

'विस्तृत-पथ हे मेरे आगे उस पर ही मुझको चलना है
चिर-शोषित असहायों के संग अत्याचारों को दलना है
साहस हो तो आओ तुम भी मेरा साथ निभा दो थोड़ा
अगर नहीं तो अब तो मैंने उस जीवन से ही मुख मोड़ा।' 1

प्रगतिशील कवियोंने इन श्रमिकों के शोषित पीड़ित, क्षुधित रुप की बडी मार्मिक व्यंजना की हैं। उन्होंने उनकी श्रम बोझिल सुबह से शाम तक की दिनचर्या प्रस्तुत की। वे सुबह से सुरज डुबने तक अपनी हड्डी-पसली को चूर चूर करते रहते है और इसका फल उन्हें मिलता है छ आना दस आना। पेटभर रोटी भी उनके नसीबमें नहीं होती। संक्षेपमें उनका जीवन निर्माण और शोषण के विरोधाभास का प्रतीक हैं।

'वह पवित्र है वह जग के कर्दम से पोषित
वह निर्माता, श्रेणि, वर्ग, धन, बलसे शोषित
मूढ, अशिक्षित-सभ्य शिक्षितों से वह शिक्षित
विश्व-उपेक्षित-शिष्ट संस्कृतों से मनुजोचित।' 2

एक ओर इस श्रमिक वर्ग का इतना दयनीय रुप हैकि, कंकड पत्थर भी उनसे अपने आपको अधिक अच्छे स्थितिमें पाते हैं -

'पर मैंने कल पथपर देखी पददलित मानवों की टोली
थी जिनकी आह्-कराहोंमें मेरी परवशता की बोली
उनकी भी हाहाकारों पर देता था कोई ध्यान नहीं
अपने सुखे जर्जर तनमें लगते थे मेरे हमजोली
जीवनमें पहले पहल मुझे अपने पर कुछ कुछ गर्व हुआ
मैं जड होकर भी इन चेतन नर-कंकालों से बढकर हूँ
मै पथ का कंकड-पत्थर हूँ।' 3

---

1. डॉ. सुमन - हिल्लोल - पृष्ठ 80
2. सुमित्रानंदन पंत - युगवाणी (श्रमजीवी) - पृष्ठ 46
3. डॉ. सुमन - प्रलयसृजन - पृष्ठ 20

15521

BARR. BALASAHEB KHARDEKAR LIBRARY
SHIVAJI UNIVERSITY, KOLHAPUR

किसान की श्रममय साधक रुप की व्यंजना करनेवाली रचनाएँ भी प्रगतिशील कवितामें अधिक मिलती हैं। श्री केदारनाथ अग्रवाल का मत हैंकि -

'यह धरती है उस किसान की
जो बैलों के कंधोपर
बरसात धाम में
जुआ भाग्य का रख देता है
खून चाटती हुई वायु में।' 1

कवि सुमनजी की 'चल रही उसकी कुदाली' शीर्षक कविता में किसान के इसी श्रममय साधक रुपकी झांकी मिलती हैं।

'हाथ है दानों सधे-से
गीत प्राणों के रुँधे से
और उसकी मूठ में, विश्वास
जीवन के बँधे-से
धकधकाती धरणि थर थर
उगला अंगार अंबर
भुन रहे तलुवे, तपस्वी-सा
खडा वह आज तन कर
शून्य-सा मन चूर है तन
पर न जाता वार खाली
चल रही उसकी कुदाली।' 2

3. **रुस मार्क्स तथा क्रांति का गुणगान -**

प्रगतिवाद का मूलाधार है साम्यवाद जिसका प्रणेता था - कार्लमार्क्स, स्थापन का साधन थी क्रांति और साम्यवाद की स्थापना का केंद्र था रुस। अतएव इसका गुणान करना प्रगतिवादी काव्य का मूल स्वर होना ही था।

मार्क्सवादी विचार दर्शन का जन्म युरोप की धरतीपर हुआ, और वहीं उसे बार बार व्यावहारिक कसौटीपर कसने की कोशिश हुई। अतः वही सर्वप्रथम रुपसमें उसे व्यावहारिक सिध्दी प्राप्त हुई। मार्क्सवादी विचार दर्शन एक आंतरराष्ट्रिय विचार दर्शन हैं।

हिंदी कवितामें प्रगतिशील आंदोलन के प्रारंभ से पहले ही आधुनिक मानव इतिहास की सबसे

---

1. डॉ. दुर्गाप्रसाद झाला - प्रगतिशील हिंदी कविता से उध्दृत -155
2. डॉ. सुमन - प्रलयसृजन - पृष्ठ 2।

महत्वपूर्ण घटना रुसमें सर्वहारा क्रांति हो चुकी थी। रुसी क्रांति प्रारंभ से ही प्रगतिशील कवियों के काव्य-सृजन की एक महती प्रेरणा रही हैं। लगभग सभी प्रगतिशील कवियोंने या तो रुसी क्रांति के बाद कविताएँ लिखी है और अपनी किसी कवितामें उसें याद किया हैं।

मार्क्सवादी विचारधारा का लक्ष्य संसार भर के सर्वहारा वर्ग की मुक्ति के लिए संसार को जगाना और उसे बदलना हैं। उस विजय का वर्णन करते हुए सुमन जी कहते हैं -

'भीषण तोपें, बम हत्यारे
छिप गये कहीं मुख मोड़ से
आश्चर्य, विश्व कर लिया विजय
हँसिए और हथौड़े से।' 1

रुसकी इसी क्रांति ने सर्वहारा के जीवनमें नवीन प्रकाश लाया। इससे शोषितों के हृदयमें एक नयी आशा का संचार किया। सुमनजी मार्क्सवादी सिध्दांतमें आस्था रखनेवाले एक नवोदित कलाकार है, जिनकी वाणीमें अद्‌भूत ओज हैं।

कवियों की धारणा थी की, जनशक्ति अजेय हैं। जनता का मनोबल शस्त्रोंद्वारा पराजित नहीं किया जा सकता। अतः जब जर्मनी की सेनायें सोवियत पर आक्रमण करती है, तो सुमनजी कहते हैं -

'अच्छा हुआ परीक्षा आई, लेगी दुनियाँ जान
इन मजदूर किसानों का, होता क्या महाप्रयाण
हँसिया और हथौडा अबतक हुआ नहीं पामाल
यह पानी से नहीं, खून से ही था झण्डा लाल
लाल तुम्हारा झण्डा वीरों, लाल तुम्हारा सैन्य
लाल तुम्हारा जीवन, तुमको क्या चिंता, दया दैन्य।' 2

4. **शोषकों के प्रति क्रोध -**

प्रगतिशील कवि की वर्ग चेतना उसकी मानवतावादी भाव प्रवृत्ति का ही तत्व है। क्योंकि वह मानव से स्नेह करता है, उसके गौरवमय रुपपर श्रध्दासे झुक जाता है। इसलिए उसके वास्तविक संघर्षों को वाणी प्रदान करना भी अपना कर्तव्य समझता हैं। मैक्सिम गोर्की ने इसीलिए उन परिस्थितियोंका अंत

---

1. डॉ. सुमन - हिल्लोल - पृष्ठ 116
2. डॉ. सुमन - प्रलयसृजन - पृष्ठ 62

करना आवश्यक माना हैं, जो कि मनुष्य को प्रताडित अपमानित करती रही है, उसे गुलाम बनाती रही हैं।' 1

प्रत्येक युगमें दो वर्ग रहे है - शोषक और शोषित वर्तमान पूँजीवादी युग भी इसका अपवाद नहीं हैं। पूँजीवादी युगने अवश्य ही सामंतीय युग का अंत कर नवीन औद्योगिक सभ्यता की स्थापना की, व्यक्ति को दासता की सीमा से बाहर कर स्वतंत्रता प्रदान की। वैज्ञानिक विकास को बढाया, साथ ही आर्थिक स्वार्थ से मानवता के केंद्र को निष्कासित कर दिया। सामंत व्यवस्थामें क्रूर शोषण का राज्य था, लेकिन उस समय मनुष्य के भावनाकूल संबंध परी तरह नष्ट नहीं हुए थे। उसके विपरित पूँजीवादी सभ्यता ने मार्क्स का मत था, केवल नग्न, निर्लज्ज प्रत्यक्ष एवं निर्मम शोषण की प्रतिष्ठा की हैं।' 2

हिंदीमें प्रगतिशील कवि ने नग्न आर्थिक स्वार्थपर, आधारित पूँजीवादी के इस रुप को मार्मिक अभिव्यक्ति दी हैं। 'त्रिलोचन' 'इन दिनों मनुष्य का महत्व कोई नहीं है' शीर्षक कविता में पूँजीवाद के इसी निर्मम रुप का चित्रण हुआ हैं -

'इन दिनों मनुष्य का महत्व कोई नहीं है
मूल्य गिर गया है जब मनुष्य का
सिंधुमें बिंदु का जो स्थान हैं
वह भी स्थान नहीं है मनुष्य का।' 3

पूँजीपति पैसे के बलपर सबकुछ खरीद सकते है। यहाँ तक कि सभ्यता, संस्कृति, गुण सत्य, शिव सुंदर आदि वस्तुएँ भी उसके अनुसार खरीदी जा सकती हैं। कार्ल मार्क्स का मत था कि, पैसा निष्ठा की प्रवंचनामें, प्रेम को घृणा, और घृणा को प्रेममें, अच्छाई को बुराई, दासों को स्वामी, और स्वामियों को दासों में, मूढता को बुद्धिमत्ता एवं बुद्धिमत्ता को मूढता में परिणत कर सकता हैं।' 4

पूँजीपति अपने धन के बलपर विज्ञान और संस्कृति को अपना गुलाम बनाते है, मानवी प्रवृति के जो चिन्ह है, उसे शोषण का साधन बना लेता हैं।

दिनकर जी की, 'कस्मै देवाय' शीर्षक कवितामें इसी सत्य का उद्घाटन हुआ हैं -

---

1. डॉ. दुर्गाप्रसाद झाला - प्रगतिशील हिन्दी कविता - पृष्ठ 144
(The supreme being for men is man himself. Consequently all rentions, all conditions in which men is hunted enstaved despised must be destroyed)
2. डॉ. दुर्गाप्रसाद झाला - प्रगतिशील हिन्दी कविता - पृष्ठ 145
3. डॉ. दुर्गाप्रसाद झाला - प्रगतिवादी हिन्दी कविता - पृष्ठ 145
4. डॉ. भक्तराम शर्मा - मार्क्सवाद और हिंदी कविता - पृष्ठ 12

'जो मंगल उपकरण कहाते, वे मनुजों के पाप हुए क्यों?
विस्मय है, विज्ञान विचारे के वर ही अभिशाप हुए क्यों?
सिर धुन धुन सभ्यता-सुंदरी रोती है बेवशनिज में
हाय दनुज किस ओर मुझे ले खींच रहे शोषित के पथ में।' 1

धन के अत्यधिक मोहसे अनियंत्रित प्रतियोगिता बढ जाती हैं। जिससें औद्योगिक विकास उच्च स्तरपर पहुँचता है, लेकिन श्रम विभाजन की प्रक्रिया सूक्ष्म होती है, और मानव जीवन नीरस बन जाता है, यंत्रिक बन जाता है। प्रकृति के प्रफुल्ल वातावरण से वह दूर जाता है। सामाजिक जीवन की समस्याएँ उसके जीवन को बोझिल बना देते हैं।

इसप्रकार प्रगतिशील कवि शोषित जनताका पक्षधर बनकर उपस्थित होता है। वह शोषक वर्ग की अमानवीय प्रकृतियों के कारण उससे घृणा करता है, उसे देखकर मुक्तिबोध कहते है -

'तेरे रक्त में भी सत्य का अवरोध
तेरे रक्त से घृणा आती तीव्र
तुझको देख मितली उमड़ आती शीघ्र
तेरे हास में भी रोग-कृमि हैं उग्र
तेरा नाश तुझ पर क्रुध्द, तुझ पर व्यग्र।' 2

निम्न शोषित वर्ग के प्रति इन कवियों के मनमें सहानुभूति की भावना है। उनका रोम रोम उसे मानवता सौंदर्य से परिपूर्ण दिखाई देता है।

5. **आर्थिक और सामाजिक चेतना -**

मार्क्स का मत था कि, इतिहास के प्रथम चरणमें कोई असमानता न थी। लेकिन दूसर चरणमें सरदारोंया परिवार के मुखियों का उदय हुआ। इसप्रकार अर्थपर शक्तिशाली लोगों का अधिकार हुआ। तीसरा चरण सामंतीवादियों का उदय था। उसके अनुसार अर्थके आधारपर समाजमें वर्ग व्यवस्था आ गयी। उसके बाद औद्योगिक विकास से पूँजीपति वर्ग तैयार हुआ। इन लोगोंका षड्यंत्र उतना भयावह थाकि, उसने आदमी को कीड़े मकोड़े के तरह जीने के लिए बाध्य किया। इसलिए समाजमें समता लाने के लिए सर्वहारा क्रांति की जरुरत महसूस हुई।

'सर्वहारा वर्ग के विषयमें डॉ. पारसनाथ मिश्र का मत है कि, 'पूँजीवाद ने आज की दुनियामें

---

1. दिनकर - चक्रवाल - पृष्ठ 18-19
2. मुक्तिबोध - (पूँजीवाद समाज के प्रति) नये प्रतिनिधि कवि - पृष्ठ 17।

मनुष्य के साथ मनुष्य के नग्न स्वार्थको खुलकर बोलने का अवसर और उन्मुक्त धरातल प्रदान किया हैं। आज यदि एक ओर समाज के लगभग सभी बुध्दिजीवी डॉक्टर, वकील, साहित्यकार, पत्रकार, वैज्ञानिक वेतनभोगी श्रमिकों के रुपमें परिवर्तित कर दिये गये हैं, तो दूसरी ओर पूँजीवादी पाशविक शोषण के फलस्वरुप सर्वहारा वर्ग के द्वारा समाज की वैल्पविक प्रवृति भावी नवसमाज के निर्माण की ओर आगे बढ़ने लगी है। सर्वहारा वर्ग शोषण से मुक्त यथार्थ मानवी संबंधो की स्थापनामें सक्रिय हो उठा है। अतएव प्रगतिशील साहित्यकार का दायित्व है कि, मानवी सत्य के अग्रगामी रुप को प्रकट करने के लिए सर्वहारा के जीवन का सर्वांगीण चित्र प्रस्तुत करें।' 1

कवि नागार्जुन श्रम की महत्ता प्रस्तुत करते हुए कहते है -

'सर्व सहनशीला अन्नपूर्णा वसुंधरा स्तुति नहीं श्रम
कठोर माँगती है, चाहती आई है सदा से धरती
कर्षण विकर्षण सिंचन परिसिंचन।' 2

कवि नागार्जून उस पूँजीवादी व्यवस्थं के एकदम खिलाफ है जिसमें सिर्फ व्यक्तिगत सुखदुख को देखा जाता हैं और गरीब की धनहीनता बढ़ती जाती हैं। यह सब आर्थिक शोषण के कारण ही होता है। क्योंकि पूँजीपति वर्ग सबको रौंदकर अपना स्वार्थ साधता है और समाज का शोषण कर उसे असहाय एवं भूखा बना देता हैं।

'अधिकाधिक योग क्षेम
अधिकाधिक शुभलाभ
अधिकाधिक चेतना
करलूँ संचित लघुतम परिधिमें
असीम रहें व्यक्तिगत हर्ष-उत्कर्ष
अकेले ही सकुशल जीलूँ सौ वर्ष
यह कैसे होगा।' 3

समाज और अर्थाधार की कल्पना करते सुमनजी जब समाज की दयनीय दशाको देखते है तो उनका अंतःकरण उद्विग्न होता है -

---

1. डॉ. रवींद्रनाथ मिश्र - डॉ.शिवमंगलसिंह सुमन की कृतियोंका समीक्षात्मक अध्ययन - पृष्ठ 56
2. डॉ. सत्यनारायण - नागार्जून कवि और कथाकार से उधृत - पृष्ठ 21
3. डॉ. सत्यनारायण - नागार्जून कवि और कथाकार से उधृत - पृष्ठ 37

'उससे भी भीषण जब मानव
व्याकुल भूख-भूख चिल्लाता
अपने ही बच्चे की रोटी छीन
उदर की ज्वाला बुझाता
बच्चा बेबस रोता-रोता
भूखा तडप-तडप मर जाता
हाय नहीं यह देखा जाता।' 1

6. **सामाजिक समस्याओंका विवेचन -**

प्रगतिवादी कवियोंने अपनी कविताओंमें सामाजिक समस्याओंका भी चित्रण किया हैं। उसमें बंगालका अकाल, महात्मा गांधी की हत्या आदि प्रमुख है, इसके अलावा महायुध्द, सांप्रदायिक दंगे आदि प्रवृत्तियोंका वर्णन किया हैं।

'दहक रहे भीषण क्षुधाग्निसे जिसके प्राण अभागे
निर्दय है, दर्शन परोसता है जो उसके आगे।' 2

यही कारण हैंकि, प्रगतिशील कवियोंने अपने युगकी अनेक महत्वपूर्ण सामाजिक घटनाओंको वर्णित किया।

क) **बंगालका अकाल -** सन 1943 के बंगाल के अकाल ने संपूर्ण देशके सामने एक अत्यंत विकराल एवं घृणित स्वरुप उपस्थित किया।

डॉ. सुमन ने अकाल का बीभत्स इन शब्दोंमें व्यक्त किया -

'निपट दुधमुंह बच्चे सूखी छाती से आसक्त
चूस रहे माँ के जीवन का बचा बचाया रक्त
जिस गोदी में जीवन पाया पाया लाड-दुलार
आज उसीमें बिना कफन के सोये शिशु सकुमार।' 3

नरेंद्र शर्मा कहते हैं -

'मृत मानव, कुछ जीवित शव,
सब हाथ पसारे आते है
दो दानों को मुठी बाँधे
मिट्टी में सो जाते हैं।' 4

---

1. डॉ. सुमन - जीवन के गान - पृष्ठ 89
2. दिनकर - हिमालय का संदेश - पृष्ठ 376
3. डॉ. सुमन - प्रलयसृजन - पृष्ठ 76
4. डॉ. दुर्गाप्रसाद झाला - प्रगतिशील हिंदी कविता से उधृत - पृष्ठ 30

डॉ. रामविलास शर्मा का मत है कि,

'हड्डी हड्डी में सुलग रही है
आग भूख की,
सुलग रहा है भीतर भीतर
रक्तहीन मानव तन।' 1

प्रगतिशील कवियोंने केवल इस नग्न और बीभत्स यथार्थ चित्रों को ही प्रस्तुत कर अपनी कर्तव्यपूर्ति न मानकर अकाल के मूल कारण पूँजीवादी समाजव्यवस्था उखाड देने की प्रतिज्ञा की और बंगवासियों को विद्रोह के लिए जागृत किया।

'मानव की शपथ ले रहे
हैं यह कह कर आज
एक-एक दाने का बदला
ले लेंगे मय ब्याज
उलट तुम्हारी सडी व्यवस्था, डालेंगे वह नींव
फिर न बिसूर-बिसूर कर मरे
नर तन धारी जीव,
वर्गभेद के शोषक शोषित के
फिर न पड़ेंगे देख
आगे के कवि को न पडेगा
लिखना ऐसा लेख।' 2

ख) द्वितीय महायुध्द -

दूसरे महायुध्द के आतंक ने प्रगतिशील कवियों को आहत किया। कविवर सुमित्रानंदन पंत कहते हैं -

'इधर अड़ा साम्राज्यवाद, शत शत विनाश के ले आयोजन,
उधर प्रतिक्रिया रुध्द शक्तियाँ क्रुध्द दे रहीं युध्द-निमंत्रण
सत्य न्याय के बाने पहने, सत्यलुब्ध लड़ रहे राष्ट्रगण,
सिंधु-तरंगोंपर क्रय-विक्रय स्पर्धा उठ गिर करती नर्तन,
धू-धू करती वाप शक्ति, विद्युत-ध्वनी करती दीर्ण दिगंतर,
ध्वंस-भ्रंश करते विस्फोटक धनिक सभ्यता से गढ़ जर्जर।' 3

---

1. डॉ. दुर्गाप्रसाद झाला - प्रतिशील हिंदी कविता से उधृत - पृष्ठ 33
2. डॉ. सुमन - प्रलयसृजन - पृष्ठ 83
3. सुमित्रानंदन पंत - ग्राम्या - पृष्ठ 87

इस महायुध्द ने मृत्यु को प्रत्येक मनुष्य के सामने विकराल रुपमें प्रस्तुत किया था। जीवन पूर्णतः अनिश्चित हो गया था।

डॉ. सुमन कहते है -

'आज रक्त घृत बन बलता है
हड्डी का ईंधन जलता है
कंकालों की आहुति पड़ती
यह ऐसी भीषण विकराला
अब तो रहा नहीं जाता हैं
अब तो सहा नहीं जाता है
क्यों न क्षार कर दें उसको
जिसने जग क्षार-क्षार कर डाला
चारों ओर जल रही ज्वाला।' 1

ब) सांप्रदायिक दंगे -

हिंदुस्थान धार्मिक समस्यासे अधिक पीडित रहा। इसका कारण अंग्रेजी शासक है। जातिय दंगोंका भीषण वर्णन कवियों ने किया है। दिनकर जी ने इन दंगोंको भारतीय स्वातंत्र्य की सबसे बडी बाधा के रुपमें देखा। उनकी आत्मा क्षुब्ध होकर कहती है -

' जलते हैं हिंदू-मुसलमान, भारत की आँखे जलती हैं,
आनेवाली आजादी की लो
दोनों पौखे जलती हैं।' 2

प्रगतिशील कवि इन दंगे फसादों को शोषकों का खेल कहते हैं। शोषक वर्ग सर्वहारा वर्गका खून चूसने के लिए इनको निर्माण करता हैं।

'जातिधर्म-गृह-हीन युगोंका नंगा-भूखा-प्यासा
आज सर्वहारा तू ही है, एक हमारी आशा,
ये छल-छंद शोषकों के है कुत्सित ओछे, गंदे
तेरा खून-चूसने को ही, ये दंगों के फंदे
मेरा देश जल रहा है,
कोई नहीं बुझानेवाला।' 3

---

1. डॉ. सुमन - जीवन के गान - पृष्ठ 76
2. दिनकर - हे मेरे स्वदेश - पृष्ठ 29
3. डॉ. सुमन - विश्वास बढता ही गया - पृष्ठ 56

6. महात्मा गांधी की हत्या -

अनेक प्रगतिशील सैध्दांतिक दृष्टिसे गांधीजीके विचारोंसे भले ही सहमत नहीं थ, परंतु राष्ट्रीय आंदोलन के नेतृत्व की दृष्टि से तथा उसके साम्राज्यवाद विरोधी, शांति कामी एवं शोषितों की प्रति सहानुभूती आदि गुणोंने सदैव प्रभावित किया। इसीकारण सांप्रदायिकता की की बलिवेदीपर हुई उनकी हत्या ने उन्हें क्रोधित बनाया।

डॉ. सुमन अपना काव्यसंग्रह पर आँख नहीं भरी में कहते है -

'यह वध है शांति, अहिंसा
श्रध्दा, क्षमा, दया, तप, समता का
यह वध है करुणामयी
सिकती दुखिया माँकी ममता का
यह वध है उन आदर्शों का
जिनपर मानवता विकी हुई है
यह वध है उन उत्कर्षोंका
जिनपर यह दुनिया टिकी हुई।' 1

लेकिन प्रगतिशील कवि इसप्रकार केवल अपनी अंतर्व्यथा प्रगट करके स्वस्थ नहीं रहें। सांप्रदायिकता की जड़ को मूल से उखाड़ फेकने की उन्होंने प्रतिज्ञा की और गांधीजी के अगणित स्वप्नोंको 'रुप और आकृति' देने की शपथ भी ली।

'मैदानों के कॉटे चुन-चुन
पथ के रोडों को हटा हटा
तेरे उन अगणित स्वप्नों को
हम रुप और आकृति देंगे
हम कोटि कोटि
तेरे औरस संतान, पिता।' 2

7. आशा और आस्था का स्वर -

प्रगतिशील कविता की समस्त भाव प्रकृतियोंमें आशा आस्था की चेतना फूलमें पराग की तरह विद्यमान हैं। इन कवियोंमें आशा और आस्था की दृढता मूलतः दो कारणोंसे है, एक तो उसे सामाजिक शक्तिपर पूर्ण विश्वास है। वह प्रगतिविरोधी शक्तियोंसे अकेले विद्रोह की घोषणा नहीं करता वह तो संपूर्ण समाजजीवन की क्रांतिकारी शक्तियोंको साथ लेकर संघर्ष के लिए आगे बढता हैं।

---

1. डॉ. सुमन - पर आँख नहीं भरी - पृष्ठ 101
2. डॉ. सत्यनारायण - नागार्जुन कवि और कथाकार - पृष्ठ 39

मार्क्सवादी सिध्दांतों के परिचय से उसकी ऐतिहासिक दृष्टि अधिक व्यापक एवं स्पष्ट हुई हैं। मार्क्सवाद के अनुसार दो विरोधी तत्व निरंतर संघर्षशील रहते हैं।

सुमित्रानंदन पंत के विचारानुसार -

जन्मशील है मरण: अमर मर मरकर जीवन
झरता नित प्राचीन, पल्लवित होता नूतन।' 1

इस ऐतिहासिक सत्य के कारण इन कवियोंका परिवर्तनपर अटल विश्वास है। सुमन कहते है-

'मैं अमर पथिक परिवर्तन का विश्वासी
जीवन मेरा अधिकार अमरता दासी।' 2

कवि आजके यथार्थ विषाक्त परिस्थितिसे पूर्ण परिचित है। उसे उखाड देने के लिए निरंतर संघर्षशील हैं।

प्रगतिवादी साहित्य का प्रतिफलन -

आज हिंदी में श्रेष्ठ साहित्य के सृजन के कौनसे क्षेत्र हैं? वे क्षेत्र है समाजवादी विचारों के क्षेत्र। प्रगतिशील साहित्य के दबाव के कारण छायावादी काव्य का समर्थ समीक्षक समाजवादी विचारोंको अपनाने लगा। ' क्योंकि छायावादी काव्यधारामें नवीन निर्माण की संभावना नहीं रह गई थी, और दूसरी ओर सामाजिक चेतना से प्रभावित एक ऐसा नया स्त्रोत फूट पड़ा था जिसमें वस्तु जगत के यथार्थ की महक थी और नये शिल्पका उन्मेष।' 3

छायावादी साहित्य धारामें वैचारिक स्थिति के लिए कोई स्थान नहीं था। इसमें कविका अपना अपना ढंग था, किंतु प्रगतिशील साहित्यने अपने साथ एक ऐसे सार्वजनिक प्रश्नोंको जन्म दिया जिसने कवियों, कथाकारों विचारकों को एक साथ आकर प्रश्नोंको सुलझाने के लिए आमंत्रित किया हैं। वह

---

1. सुमित्रानंदन पंत - संयोजिता से उधृत - पृष्ठ 24
2. डॉ. सुमन - पर आँख नहीं भरी - पृष्ठ 55
3. डॉ. अजितसिंह - प्रगतिवादी काव्य उद्भव और विकास - पृष्ठ 87

प्रश्न था कस्मै देवाय? साहित्य किसके लिए है, समाजवादी व्यवस्था के नुसार राजनीति, दर्शन एवं साहित्य के क्षेत्रमें गुणात्मक परिवर्तन हुआ। जीवन को नयी दिशा मिल गयी। ऐसा प्रतित हुआ कि सैंकडो वर्ष से चली आ रही प्राचीनता का अंत होकर नवीन युगका उदय होनेवाला हैं।

ऐसी परिस्थितिमें नेताओं, विचारकों, देशभक्तों, साहित्यकारों के सामने पश्न था कि, हजारों वर्ष से चली आ रही रुढी प्रवाहमें बहेंगे या नया युग लाने के लिए प्रयत्न करेंगे।

तभी प्रगतिवादियोंने साहित्य किसके लिए इस प्रश्न के उत्तरमें कहा - 'साहित्य किसी की व्यक्तिगत संपत्ति नहीं वह सारे समाज की संपत्ति हो जाती है। साहित्यकार के सारे भाव, विचार व्यक्त होने के क्षण से समाज की संपत्ति हो जाते है।

छायावादी कवियोंसे आगे बढ़कर प्रगतिवादी कवियोंने अपना अलग परिचय दिया। साथ ही तत्कालीन आर्थिक और राजनीतिक परिस्थितियोंने भी इसे प्रभावित किया। उस समय प्रत्येक लेखक के सामने स्वातंत्र्य की समस्या थी। किसान और मजदूर की दयनीय स्थिति के बावजूद उनमें स्वाधीनता के प्रति कितनी बेचैनी थी, इन बेचैनी ने भी उस समय की चेतना को प्रभावित किया। इस आजादी को प्राप्त करने के मूलमें सदियों चलती आई साम्राज्यवादी शोषण नीतिके विरोधमें जनजीवन खड़ा हो गया था। फलतः युगीन परिस्थितियोंने इन कवियोंको भी प्रभावित किया।

दूसरी सामाजिक और साहित्यिक परिस्थितियोंमें प्रगतिवाद का स्वाभाविक प्रादुर्भाव हो चुका था।

इन कवियों की काव्य कृतियों के द्वारा इस काल की कविता की जिन मूल प्रवृत्तियों का दर्शन होता है, उनमें प्रेम की स्थूल, मांसल, ऐंद्रिय अभिव्यक्ति, निराशावाद, मृत्युपासना के प्रति रुझान, नियतिवाद, भोगवाद दृष्टि, पलनयनवाद ईश्वर तथा धर्म के प्रति अनास्था और विद्रोह का भाव आदि प्रवृत्तियाँ दिखाई देती हैं।

इसप्रकार कहा जा सकता हैंकि प्रम का स्थूल, मांसल तथा ऐंद्रिक अभिव्यक्त प्रदान करनेवाले इन नियतिवादी भोगवादी कवियोंने व्यष्टि और समष्टी के संघर्षमें रहते हुए रुमानी रचना करने के साथ साथ युगीन परिस्थितियोंका भी चित्रण किया। सामाजिक यथार्थ दृष्टि प्रगतिवाद के परिधिमें अधिकांश साहित्यकार आ गये। निरंतर विकासशील साहित्यधारा के रुपमें प्रगतिशील साहित्य प्रगतिशील रहा और राजनैतिक जागरण के स्वरुपमें इसे सर्वत्र अपनाया गया। उनके विचार से ऐसी रुमानियत का त्याग है जिसमें यथार्थ के विषयमें कोई मतलब न रखा जाय। प्रगतिवादी संघर्ष से लड़ना जानते हैं। वे

छायावाद के काल्पनिकता और पलायनवाद का विरोध करता हैं। यथार्थ भले ही प्रगतिवाद का मूल प्रेरणा स्त्रोत हैं, किंतु वे नग्न यथार्थ से आगे बढ़कर ऐसे यथार्थ को ग्रहण करते है जिसमें समाजवादी विकासके तत्व हो। वे कला के रुप तत्ववाले यथार्थ को न मानकर विचार तत्व को ग्रहण करते हैं।

यथार्थ को प्रगतिवादी सामाजिक यथार्थ के नाम से अभिहत करता है। क्योंकि प्रगतिशील साहित्यमें समाजवादी यथार्थवाद का एक विशिष्ट अर्थ होता हैं।

असंतुष्ट नाजवानों, बुध्दिजीवियों ने एक परंपरा विरोधी आंदोलन के रुपमें स्वागत किया। इस अव्यवस्था पैदा करनेवाली व्यवस्था से घृणा करनेवाले तथा पूर्वग्रहों से मुक्त धरती के शुभचिंतकोंने प्रगतिवाद का स्वागत किया। यहीं से हिन्दी काव्य एक नवीन युग की आकांक्षाओंका आधार बनता हैं। अनुभूतियों का साहसपूर्ण वर्णन और अपनी दुर्बलताओं की आत्मस्वीकृति इन कवियोंको सर्वथा नवीन व्यक्तिपरक कविता का जन्मदाता सिध्द करती हैं।

इसलिये तय हो जाता हैकि, कलाको विशाल बहुमत की कसौटीपर खरा उतरना पडेगा। क्योंकि, प्रगतिवादी मानते हैंकि, सामाजिक देन है।' 1

इस परिवर्तन का कालक्रम 1933 के आसपास था आदर्शवाद की सीमाएँ टूट रही थी, प्राचीन रुढियोंपर प्रहार किया गया। भाग्यवाद को ठुकरा दिया गया, मार्क्सवादी स्वर को कवितामें भर दिया।

दिनकरजी कुरुक्षेत्रमें कहते है -

'भाग्यवाद आवरण पाप का
और शस्त्र शोषण का
जिससे रखता दबा एक जन,
भाग्य दूसरे जन का।' 2

इतना ही नहीं छायावादी कवि सुमित्रानंदन पंतने भी परिवर्तित स्वर में कहा -

'मैं सृष्टि एक रच रहानवल, भावी मानव के हित भीतर
सौन्दर्य स्नेह उल्लास मुझे, मिल सका नहीं जगमें बाहर।' 3

नई चेतना के समय कला साहित्य के सिध्दातों में परिवर्तन हुआ। सामान्य जनजीवन अपने लिए उपयुक्त साहित्य अपनाता है। कला अथवा साहित्य की स्थापना उसकी उपयोगिता के प्रमाण जनता पर

---

1. डॉ. अजितसिंह - प्रगतिवादी काव्य उद्‌भव और विकास - पृष्ठ 88
2. रामधारीसिंह दिनकर - कुरुक्षेत्र - पृष्ठ 107
3. अरविंद पांडे - हिन्दी के प्रमुख कवि रचना और शिल्प से उधृत - पृष्ठ 135

अवलंबित होता हैं। इसी कारण इस युग की वास्तविकतामें सामाजिक यथार्थ बोध का विकास हुआ। युगोंसे उपेक्षित मानवीय पात्र, विषय, यथार्थ के रुपमें काव्यमें प्रतिष्ठित किये गये।

दलित रुढियों, मिथ्या चिंतन, काल्पनिकता, भाव विलास की स्थिति से ऊपर उठकर कविने समाज के काले पक्ष पर प्रहार किया। विद्रोही स्वर को घोषित किया। वर्ग संघर्ष की तीव्र भावना पल्लवित हुई।

छायावादी काव्यधारामें भी जनजीवन की पीडा, उपेक्षा के स्वर विद्यमान हैं। स्वयं निराला ने भिक्षुक, वह तोडती पत्थर आदि कविता रची। साहित्यको जीवन के संदर्भमें विकास मार्ग मिला। विषयवस्तु के रुपमें भारतीय जीवन को लिया गया। फलतः प्रगतिवाद मार्क्सवादी दर्शन तथा नये वैज्ञानिक विचारोंसे प्रभावित हुआ, और उसने ईश्वर के स्थानपर मानव की प्रतिष्ठा की - संसार किसी ईश्वर या मनुष्य की सृष्टि नहीं, वह गतिशील कार्य की एक ऐसी जीवित अग्निशिखा है जो अंशतः उर्ध्व विकास और अंशतः अधःपतन की ओर उन्मुख हैं।' 1

निष्कर्ष रुपमें यहीं कहा जा सकता है कि, प्रगतिवाद नितांत भारतीय है, युग की आवश्यकता और इसकी भारतीयताने ही कवि रवींद्रनाथ टैगोर, प्रेमचंद, पंत निराला जैसे साहित्यकारों को अपने ओर आकर्षित किया।

परंपरा के संदर्भमें प्रगतिवादी परंपरा को स्वीकार करता है। वह मानता हैकि, परंपरा से प्रगति संभव है। प्राचीन संस्कृत के रुपमें जो तत्व है वह समाज के जनवादी स्वरुप को उभारकर परिपुष्ट करें। प्रगतिवाद अतीतकी देन विरासतमें स्वीकार करता हैं, किंतु शर्त यह कि वह तत्व सामाजिक तर्क विज्ञान द्वारा जनवादी हो।

यथार्थता इस काव्य का मूल स्त्रोत हैं। प्रगतिवाद राजनीतिक गतिविधियोंसे असंबंध नहीं होता। इस विचारधारा के अनुसार राजनैतिक जागरण एक आवश्यक विशेषण है। साथ ही वे कला और राजनीति में एकता चाहते हैं। कलात्मक सौंदर्य विहीन कृति और गलत राजनैतिक दृष्टि प्रदान करनेवाली कृतिसे प्रगतिवादी विरोध करता हैं। वस्तु और शिल्प के बारेमें प्रगतिवाद का मत है कि, वस्तु और शिल्प को आकर्षक स्वरुप प्रदान किया जाय किंतु साथ ही वे सामाजिक यथार्थ को कोई महत्व नहीं

---

1. डॉ. अजितसिंह - प्रगतिवादी काव्य उद्भव और विकास - पृष्ठ 90

देते हैं। किंतु बादमें केदारनाथ अग्रवाल, शिवमंगलसिंह सुमनने इस क्षेत्रको मूल्यवान बनाया हैं।

प्रगतिवाद साहित्य को सामाजिक हितमें स्वीकार करता हैं। वह सामाजिक विकासमें माध्यम के रुपमें साहित्यकी भूमिका का महत्व समझता है। इसी कारण से प्रगतिशील साहित्यकार की दृष्टि समाज के शोषित और पीड़ित वर्ग की ओर ही विशेष रुप से होती हैं। उनका विश्वास हैं -

'हम लघु दीपोंके समान ही जले ज्यो तिले
और ज्योति से ज्योति मिलाकर रहे जागते
क्षण क्षण के संशय संर्घम जो मिले सामने
पराभूत होकर वे हमसे रहे भागते।' 1

---

1. डॉ. दुर्गाप्रसाद झाला - प्रगतिशील हिंदी कविता से उधृत - पृष्ठ 173

हिन्दी काव्यमें मार्क्सवादी विचारधारा - मार्क्सवादी सिध्दांत

मार्क्सवादी विचारधारासे विश्वमें नये परिवर्तन का प्रारंभ हुआ, शासन बदल गया, पूँजीवादकी जडे हिल गई, काल्पनिक वाद दफन हो गये। इस धारा के कारण सभी देश, साहित्य कला, संस्कृति प्रभावित हुए। मार्क्सवाद ने राजनीति की तरह सर्वहारा वर्ग और दर्शन के क्षेत्रमें क्रांतिकारी दिशा दी। मार्क्सवादी विचारधारा का अपना एक वैज्ञानिक दृष्टिकोण है, मार्क्सवाद का जन्म संघर्ष से हुआ।

मार्क्सवाद के संदर्भमें डॉ. जनेश्वर वर्मा का मत हैंकि, - "पूँजीवाद का अविर्भाव सर्वप्रथम युरोपिय देशोंमें, विशेषकर इंग्लैंड, जर्मनी, फ्रांस में ही हुआ था। फलतः पूँजीवाद से उत्पन्न होनेवाली विषमताओं की प्रतिक्रिया स्वरुप विभिन्न साम्यवादी विचारधाराओं का आरंभ भी योरोप के इन्हीं देशोंमें हुआ, जिसका चरम विकास हम मार्क्सवाद के रुपमें देखते हैं। आरंभमें मार्क्सवाद विचारधारा के पश्चीमी देशोंतक ही सीमित थी, परंतु सोवियत संघ की स्थापना विश्व इतिहास की एक ऐसी घटना थी जिसने समस्त संसार को मार्क्सवाद की ओर आकर्षित किया।" 1

मार्क्सवाद का जन्मदाता कार्ल हाइनरिख मार्क्स था जिस का जन्म प्रशा के ट्रियर नगरमें हुआ। मार्क्सवादी विचारधारा को स्वरुप देनेमें उसके सहयोगी एंगेल्स का महत्वपूर्ण सहयोग रहा। सामाजिक परिवर्तन के संदर्भमें इस नारे को जन्म दिया गया - 'सर्वहारा के पास दासता की श्रृंखलाओं को छोडकर अब और कुछ खोने के लिए बाकी नहीं रहा, परंतु विजय के लिए उसके सम्मुख एक विशाल विश्व है। ऐ। दुनिया के मजदूर एक हो।' अर्थात समाजकी ईकाई मानव को एक नये परिवेश ढालना रहा।" 2

मार्क्सवाद काव्य कला को अति प्राचीन काल से चली आई प्रक्रिया मानता हैं। काव्य का उद्भव मानव जन्म से ही स्वीकारता हैं। किसी एक व्यक्ति को इसका श्रेय नहीं देता। जार्ज थामस के अनुसार काव्य मूलतः भाषण क्रिया का ही एक विशिष्ट स्वरुप हैं अतः काव्य के उद्गम की व्याख्या करते करते हम स्वयं मानव जाति के विकास के मूलतक पहुँच जाते हैं। कविता या लेखन मान विकास की पंरपरा के साथ संलग्न है, भिन्न नहीं। मार्क्सवादी साहित्य के मानदंड इसप्रकार कहे जा सकते हैं-

1. काव्य मानव जीवन के सामाजिक और सांस्कृतिक विकासक्रम के साथ अविच्छिन्न रुपसे संबंध हैं।
2. जैसे उत्पादन प्रक्रिया का विकास हुआ उसी तरह भाषा का भी विकास हुआ हैं।

---

1. उमेशशास्त्री - हिन्दी साहित्य की प्रमुख प्रवृत्तियाँ - पृष्ठ 32

3. भाषा का आवेग मूलतः साहित्य है।
4. वर्ग चेतना, पूँजीवाद का विरोध मुख्य आधार है।
5. लयात्मकता व भावावेग सामूहिक प्रेरणा का साधन है।
6. व्यक्ति की अपेक्षा सामाजिक अस्तित्व को स्वीकार किया गया है।
7. काव्य सामूहिक भावोंकी अभिव्यक्तिका साधन मात्र है।
8. काल्पनिक सृष्टिमें भी सामाजिक अभिव्यक्ति होनी चाहिए।
9. साहित्यकार की समाज निरपेक्ष सत्ताका कोई स्थान नहीं।
10. कला कला के लिए नही, अपितु कला जीवन के लिए स्वीकारता हैं।
11. दलित, शोषित व सर्वहारा वर्ग का प्रतिनिधित्व करता हैं।
12. मार्क्सवाद पलायनवाद हालावाद का कट्टर विरोधी है।
13. साहित्य का सृजन जीविकामार्जन नहीं समझता।
14. काव्यमें सत्य के स्वरुप की प्रतिष्ठा करता हैं।
15. समाजवादी यथार्थवाद का पक्षधर हैं।
16. उपयोगितावाद और भौतिकवाद का प्रबल समर्थक है।
17. सौंदर्य भावना के बाह्य रुपको न स्वीकार कर उसकी चेतना के सौंदर्य को देखना चाहता हैं।

मार्क्सवादी विचारधारा और हिन्दी काव्य -

विश्वव्यापी राजनीतिक आंदोलन एवं घटनाओंसे भारत भी प्रभावित होता रहा। रुसी क्रांति की सफलता के कारण इस देशमें मार्क्सवाद आया।

हिन्दी काव्यमें मार्क्सवादी चेतना का उदय द्विवेदी युगमें हुआ। डॉ. वर्मा का मत हैंकि, द्विवेदी युगीन इन समस्त काव्य प्रवृत्तियोंमें से राष्ट्रीय काव्यधाराने मार्क्सवादी विचारधाराको हिंदी काव्यके क्षेत्रमें जड़ जमाने और विकसित होनेमें अप्रत्यक्ष रुपसे पर्याप्त योगदान दिया हैं।

मार्क्सवादी चेतना चरम विकासतक पहुँची समस्त मानवता को एक नयी व्यवस्था एक नया परिवेश प्रदान किया।

मार्क्सवादी साहित्य चिंतन साहित्य एवं कला के क्षेत्रमें मार्क्सवादी विचार दर्शन का ही प्रतिफलन हैं। मार्क्स तथा एंगेल्स की समाज तथा जीवनसंबंधी अवधारणाओंमें प्राप्त होनेवाली सूत्रोंसे ही उसकी बुनावट हुई हैं। इस संबंधमें मार्क्स की कृति का 'ए कंट्रीब्यूशन टु दि क्रिटीक आफ पोलिटिकल इकानमी' में

उसकी भूमिका का अंश प्रसिध्द है, जिसे विचारकों के अनुसार मार्क्सवादी चिंतन का मूलाधार माना जा सकता हैं। वह अंश निम्नलिखित -

'सामाजिक जीवन की उत्पादन प्रक्रियामें मनुष्य ऐसे सुनिश्चित संबंधोंकी स्थापना करते है, जो अपरिहार्य हैं। इस संबंधो का योग अथवा संपूर्णता ही समाजके आर्थिक धरातल का निर्माण करती है, उसका वह सही आधार बनाती है, जिसपर एक न्यायिक तथं राजनीतिक बाह्य संरचना खडी होती है और सामाजिक चेतना के सुनिश्चित रुप जिसके साथ सामंजस्य स्थापित करते है। सामान्यतः भौतिक जीवनकी उत्पादन पध्दति हमारे सामाजिक राजनीतिक बौध्दिक जीवन की प्रक्रियाको अनुकूलित बनाती है। मनुष्य की चेतना उसके अस्तित्व का निर्धारण न रहकर सामाजिक अस्तित्व उसकी चेतना का निर्धारण करता हैं।'

मार्क्सवाद संसार तथा समाज को बदलने की माँग करनेवाला परिवर्तन की प्रक्रिया को तेज करनेवाला और उसके दौरान उसमें आगे बढकर हिस्सा लेनेवाला दर्शन है और परिवर्तन की इस प्रक्रियामें साहित्य और कलाको एक प्रभावशाली माध्यम के रुपमें स्वीकार करता हैं। मार्क्सवाद साहित्य या कलाओं को विशिष्ट मानवीय उपलब्धियों के रुपमें स्वीकार करता हैं, जिन्हें मनुष्यने बाह्य जगत के संपर्क से अपने भाव जगत को पुष्ट करते हुए अपने विचारोंको व्यक्त किया। विविध विषयोंपर दिए गए अपने लेखनमें मार्क्स तथा एंगेल्स का मत हैकि, 'कलात्मक बिंब की सच्चाई इस बातमें निहित हैंकि यह वैचारिक रुपांतरण और श्रमिक जनता को समाजवादमें दीक्षित करने के काम से जुड़ जाय, उपन्यास और साहित्य समीक्षा का समाजवाद यहीं हैं।' 1

कला तथा उसके उद्‌भव और विकास के बारेमें मार्क्स का मत हैकि, उसे दिव्य वस्तु या दैवी प्रतिभा का अविष्कार रुपका जोरदार खंडन किया हैं। कविता या कला कोई ऐसा फूल नहीं अथवा स्वर्गका अमृतकण नीं जो किसी अदृश्य शक्ति की इच्छा से अनायास धरतीपर या कलाकार के मानसमें टपक पडीं हो। या कलाकार ने दैवी वरदान के रुपमें उसे जन्म से पाया हो। कला विशिष्ट मानवीय श्रम की उपलब्धि है, जिसे मनुष्य ने अपने दीर्घकालीन सामाजिक जीवनके विकास क्रम में, समाजको तथा उसके साथ स्वयं को बदलकर प्राप्त किया है। 2कविता तथा कला का विकास भी समाज तथा मनुष्य जीवन के क्रांतिकारी विकास के साथ संलग्न है। मनुष्य के जिस इंद्रिय बोध, भावजगत अथवा सौंदर्य चेतना की ये कृति है, वह भी दृश्य जगत से अलग न होकर उसी की प्रतिछाया उसी की देन हैं।

---

1. शिवकुमार मिश्र - यथार्थवाद - पृष्ठ 119
2. शिवकुमार मिश्र - यथार्थवाद - पृष्ठ 124
(Art is one of the conditions of man's realisation of himself, and it's turn is one of the realities of man).

इसीलिये निश्चित रुपसे कलाको इसी लोक की, इसी लोकमें प्राप्त हुई और यहींपर विकसित हुई, बुध्दिमान और विवेकशील प्राणी मनुष्य की कृति के रुपमें स्वीकार करना चाहिए।

मार्क्सवाद मूलतः संसार तथा समाज को समझने उन्हें बदलने का पथ प्रदर्शन करनेवाला तथा परिवर्तन की प्रक्रियामें अपनी सक्रिय भूमिका निभानेवाला एक क्रांतिकारी विचार दर्शन हैं। साहित्य एवं साहित्यकार उसके अनुसार उसी सांसारिक तथा सामाजिक जीवनके बीच जन्म लेनेवाली उसी से जीने की शक्ति की शक्ति ग्रहण करके उसी के बीच फूलनेवाली इयताएँ हैं। साहित्य एवं साहित्यकार को परखने का उसका प्रतिमान यही हैंकि, वे इस संसार तथा समाज को समझने एवं उसे बदलने की दिशामें, उसके केंद्रमें स्थित मनुष्यको कहाँ तक और कितनी दूर तक सक्षम बना सके हैं?

यथार्थवाद के बारेमें मार्क्स का मत हैकि, समाज अथवा मनुष्य का यथार्थ कोई टुकडोंमें बटी हुई वस्तु न होकर, अपने में एक ऐसी समग्र इयता है जिसमें जीवन, समाज तथा मनुष्य अपनी संपूर्णतामें व्यक्त होते हैं। सत्य का उसकी समग्रता तथा संपूर्ण वस्तुपरकता के साथ उसकी क्रांतिकारी विकास स्थितियोंमें प्रस्तुतीकरण ही मार्क्सवादी साहित्य चिंतन के यथार्थपरक चरित्र्य की केंद्रीय विशेषता है। इसके लिये साहित्यकार या लेखक को अपनी संपूर्ण ज्ञानेंद्रियों की सजगता तथा सक्रियता के साथ, जीवन तथा समाज के बीच से गुजरना पड़ता हैं।' ।

वर्ग संघर्ष के बारेमें मार्क्स कहते हैकि, वर्ग संघर्ष को सही संदर्भोंमें पहचाने उसे नष्ट करें। अपने निर्णायक लड़ाई से तटस्थ नहीं रहा जा सकता। सत्य तथा न्याय के प्रति निष्ठा रखनेवाले साहित्यकार को उसमें भाग लेना होगा। वर्गोंका विभाजन मार्क्सवाद की देन हैं। वर्गोंमें बँटे हुए समाजमें, विरोधी तथा विपरीत हितों के कारण वर्ग संघर्ष अनिवार्य है। मार्क्सवाद वर्ग संघर्ष का नाश चाहता हैं। उसकी अपेक्षा समतापूर्ण समाज की स्थापना करना हैं।

'मार्क्सवाद पूँजीवाद की विकृत समाज व्यवस्था के स्थानपर एक स्वस्थ, सुंदर, संपन्न व्यवस्था की स्थापना के लिए मनुष्य को संसार तथं समाज के के स्वरुप तथा विकास से वैज्ञानिक समझसे परिचित करानेवाला क्रांतिकारी विचार दर्शन हैं। 'जन-सामान्य के शोषणपर आधारित, सामाजिक तथा मानवीय जीवन के उदात्त मूल्यों, कला साहित्य तथा सौंदर्य की अबतक संपूर्ण मूल्यवान विरासत को साम्राज्यवाद, वर्गभेद निर्माण करनेवाली आर्थिक विषमतामें मनुष्य को फंसाकर उदात्त सौंदर्य चेतना को कुंठित कर

---

1. शिवकुमार मिश्र - यथार्थवाद - पृष्ठ 142

देनेवाली निहायत भद्दी, कुत्सित पूँजीवाद व्यवस्था को नष्ट कर देना चाहिए। ' ।

मार्क्सवादी साहित्य चिंतकोंने साहित्य एवं कलाओं के केंद्रमें मनुष्य की प्रतिष्ठा और उसके संपूर्ण व्यक्तिमत्व चित्रण को महत्व दिया। मार्क्सवाद सारे आधुनिकता वादी आंदोलन को चुनौती देता हैं। ताकि सच्चे, स्वस्थ यथार्थवादी कलासृजन के मार्गमें बाधाएँ न आने पाए, उस पर चलनेवाले निर्भ्रांत, अपनी सही और आकांक्षित मंजिल पहुँच सके।

हिन्दी के प्रमुख प्रगतिवादी कवि और शिवमंगलसिंह सुमन

प्रगतिवादने अपनी सीमाओं के बावजूद हिंदी काव्यधारा के विकास में एक बहुत ही महत्वपूर्ण अध्याय जोडा। 'उसने काव्य को व्यक्तिवादी यथार्थ के बंद कमरे से निकालकर जनजीवन के बीच प्रवाहित कर दिया। जीवन और साहित्य के मूल्य, सौंदर्यबोध और लक्ष्यको समाज के यथार्थ और उसकी रचना से जोडा। उसे भषा के कोहरे से निकालकर धरातलपर प्रतिष्ठित किया।' 2

इन प्रगतिशील कवियोंमें प्रमुख हैं - निराला, पंत, दिनकर, नागार्जुन, मुक्तिबोध, रांगेय राघव, रामविलास शर्मा, केदारनाथ अग्रवाल और शिवमंगलसिंह सुमन।

अत: इन कवियोंके कृतित्व का संक्षिप्त परिचय हम करेंगे।

1. सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' -

बंगाल के कवि निराला का जन्म 21 फरवरी 1899 में हुआ। निरालाजीनें विविध प्रकार का काव्य लिखा हैं। किन्तु आलोचकोंने निराला काव्यको दो प्रकार से वर्गीकृत किया- 1)रचना कालके आधारपर 2) रचना प्रकृति के आधारपर, प्रथम प्रकारमें 1916 से 1938 की रचनाएँ जिनमें छायावादी रहस्यवादी स्वर की प्रधानता हैं। दूसरेमें 1938 से 1961 तक की रचनाएँ जिनमें प्रगतिवाद, प्रयोगवाद की प्रधानता हैं।' 3 हम सिर्फ उनके प्रगतिवादी काव्यपर विचार करेंगे।

सन 1938 के पश्चात् तुलसीदास खंडकाव्य के बाद से कवि की काव्य चेतना एक नवीन मार्ग की ओर जाती हैं। यह नवीन मार्ग था प्रगतिवाद। यद्यपि कालक्रम से इसके कुछ सूत्र पूर्ववर्ती रचनाओं वह तोड़ती पत्थरमें भी मिलते हैं। किंतु उनका वेगयुक्त स्वर परवर्ती रचनाओंमें ही अधिक सुनायी पडता हैं।

---

1. शिवकुमार मिश्र - यथार्थवाद - पृष्ठ 142
2. डॉ. रणजीत - हिन्दी की प्रगतिशील कविता - पृष्ठ 154
3. सुरेशचंद्र निर्मल - आधुनिक हिंदी काव्य और कवि - पृष्ठ 134

निरालाजी ने समय की गति को पहचानकर अपने काव्य को नया मोड दिया। इस क्षेत्रमें निराला व्यंग्यकार बने। इन जैसे अक्खड निर्भीक मस्तमौला कविने व्यंग को अत्यधिक शक्तिशाली बनाकर निखार दिया।

निराला काव्य के निम्न उदाहरणोंमें प्रगतिवादी मान्यताएँ अपने चरम रुपमें मुखर हुई मिलती हैं-

1. 'अबे सुन बे गुलाब
भूल मत जो पाई खुशबू रंगो आब
खून चूसा खा का तुने अशिष्ट
डाल पर इतरा रहा है कैपिटलिस्ट।' 1

2. 'वह आता
दो टूक कलेजे के करता पछताता।' 2

उपर्युक्त दो उध्दरणों कुकुरमुत्ता और भिक्षुक के है। इसके अलावा वह तोडती पत्थर, कुत्ता भौंकने लगा, मित्र के प्रति, दान, सडक के किनारे दुकान है, डिप्टी साहब आये है, जल्द जल्द पैर बढाओं, मास्को डायलाग्स, महंगू महंगा रहा, न आये वीर जवाहरलाल, चूंकी यह दाना है, जागो फिर एक बार आदि कविताएँ इस वर्ग में आती हैं। श्री विश्वंभर मानव का मत हैंकि, 'निराला जी तो प्रगतिवाद के आंदोलन से पूर्व ही प्रगतिशील थे। उनका 'बादलि राग' इस बात का प्रमाण हैं। समाज, राजनीति और धर्म के क्षेत्रमें क्रांतिकारी भावनाओंका परिचय देने के कारण वे विद्रोही कवि के नाम से प्रसिध्द हैं। रुढियोंपर इन्होंने डटकर प्रहार किया। और उनका सा विषय विस्तार, संवेदनाओं की विविधता, काव्य की सरसता, उदार दृष्किोण व्यंग की क्षमता, किसी भी प्रगतिवादी कविमें नहीं।

2. **सुमित्रानंदन पंत -**

पंत का जन्म 20 मई 1900 ई में उत्तरप्रदेश में हुआ। उनका साहित्य विस्तृत हैं। कविता के साथ-साथ वे एक सफल समीक्षक भी हैं।

आधुनिक हिन्दी कविता के प्रत्यक्षदर्शी, रचना निमग्न कवि सुमित्रानंदन पंत अपने जीवन के साक्ष्यमें बदलते कालखंडों के स्पंदनों को सुनते, सँजोते और उसीसे प्रेरणा और प्रोत्साहन ग्रहण करते रहे। कवि पंत मार्क्स के भौतिक कल्याण और शोषण विहीन समाज को स्वीकारते हैं। पर वर्ग संघर्ष को नहीं स्वीकारते।

---

1. सुरेशचंद्र निर्मल - आधुनिक हिंदी काव्य और कवि से उधृत - पृष्ठ 129
2. सुरेशचंद्र निर्मल - आधुनिक हिंदी काव्य और कवि से उधृत - पृष्ठ 129

उत्तरा के प्रस्तावनामें पंत लिखते हैं - 'अतः मैं वर्गहीन सामाजिक विधान के साथ ही मानव अहंता के विधान को भी नवीन चेतना रुपमें परिणति संभव समझता हूँ और युग संघर्षमें वर्ग संघर्षके अतिरिक्त अंर्तमानव का संघर्ष भी देखता हूँ।'

पंत के विचारों को मार्क्स, गांधी, अरविंद, और अनेक ग्रंथों, विचारकों कवियों ने प्रभावित किया। उन्होंने उन प्रभावों को अपने मानसिक स्तरपर स्वीकार किया। वैचारिक मंथन के पश्चात उन्होंने उनके समन्वय का प्रयत्न किया। यही उनकी नवचेतना वादी दृष्टि हैं। दो महायुध्दोंमें हुआ विनाश, एटमी विनाश का खतरा भी उनके काव्यमें वर्णित हैं।

युगीन आचार क्रिया और व्यवहार से पंत का मत हैकि, अर्थनीति शोषणपर राजनीति अधिकारोंपर समाजनीति स्वार्थोपर और संस्कृति मध्यकालीन रुढ़ियोंपर आधारित हैं। मानवता संकीर्णताओंमें विभक्त है, पशु प्रवृत्तियों का प्राबल्य है। इन्हीं कारणोंके आधारपर पंत नवीन मानवता का स्वप्न सँजोते हैं।

सुमित्रानंदन पंत चाहते हैकि, 'मानवी सत्य की समग्रता की प्रतिष्ठा हो जिससे शरीर एवं आत्मा को संतोष मिले। इस आयोजनमें मार्क्सवादी विचारधारा से लोक जीवन की संपन्नता गांधीवादसे मानवीय गुणोंकी प्रतिष्ठा, रागवृत्ति का परिष्कार और महर्षि अरविंद के विचारोंसे असीम के स्पर्शद्वारा मानवीय प्रवृत्तियों के उन्नयन का विचार उन्होंने ग्रहण किया।' 1

पंतजी की काव्यदृष्टि किस तरह एक नये पथपर आरुढ़ हो रही थी, इसका एक संकेत 'गा कोकिल' वाली कविता में मिलता हैं, कवि कोकिल से भी पुरातन के नाश और नूतन के संदेश को प्रसारित करने का आग्रह करता हैं -

'गा कोकिल, बरसा पावक कण
नष्ट-भ्रष्ट हो जीर्ण पुरातन
ध्वंस भ्रंस जग के जड़बंधन
पावक पगधर आवे नूतन
हो पल्लवित नवल मानव पन।' 2

3. **रामधारी सिंह दिनकर -**

बिहारमें सिमरिया गाँवमें 1316 में दिनकरजी का जन्म हुआ। उन्होंने निबंध, यात्रा संस्मरण संस्कृति, गद्यकाव्य, बाल साहित्य, खंडकाव्य गीतनाटय आदि अनेक प्रकारका साहित्य लिखा।

---

1. अरविंद पांडे - हिन्दी के प्रमुख कवि रचना और शिल्प - पृष्ठ 65
2. श्री. रामजी पांडे - सुमित्रानंदन पंत व्यक्ति और कृतित्व से उधृत - पृष्ठ 25

आलोचकोंने दिनकरजी के काव्य रचनाओंको स्वातंत्र्यपूर्व, स्वातंत्र्य परवर्ति नामक दो वर्गोंमें बाँटा हैं। इसके अनुसार प्रथम भाग में रेणुका, हुंकार, रसवंती, द्वंद्वगीत, कुरुक्षेत्र, सामधेनी आदि कृतियाँ आती हैं। डॉ. सावित्री सिन्हा का मत हैकि, दिनकरजी प्रगतिवादी विचारधारा को अपनाते है, राष्ट्रीयता के उपासक भी है। उनकी काव्य चेतना हिंदी काव्य विविध प्रवृत्तियों की लहरों के साथ न उठी, न गिरी। हिंदी के विविध वादोंसे अलग उनकी एक स्वतंत्र सत्ता है।' 1

दिनकरजीके स्वातंत्र्यपूर्व काव्य चेतना को सोपानोंमेंरखा जाता है।

1. राष्ट्रीय चेतना - इसमें देशाबद्ध अतीत कालीन समृध्दि का गुणगान, प्राचीन आख्यान, वर्तमान समाज की अवस्था, रुढियाँ, कुरीतियाँ, भविषों नव उत्थापन, राष्ट्र का भावी आदर्श आदि आती है।
2. यथार्थवादी कलाचेतना
3. निवृत्तिमूलक वैयक्तिक चेतना
4. कल्पना प्रधान सौंदर्य चेतना
5. श्रृंगार और नारी भावना

स्वातंत्र्योत्तर कालीन काव्य चेतना की प्रवृत्तियाँ थी - 1) समस्या चिंतन 2) हास्यव्यंग 3) मानवतावाद

स्वाधीनता के बाद की और संविधान निर्माण काल की स्थापना के लिए कर्ण चरित्र का उद्घाटन किया। बापूने कहा था - 'सभी हरि के जन है' अस्पृश्यता का कलंक जो जातीय जीवन से जुड़ गया था उसी जातियता पर कवि प्रहार करता हैं।

'मस्तक ऊँचा किये, जातिका नाम लिये चलते हो
मगर असलमें, शोषण के बलसे सुख से पलते हो
अधम जातियों से थर थर काँपते तुम्हारे प्राण
छलसे माँग लिया करते हो अँगूठे का दान।' 2

4. **नागार्जुन -**

बाबा के नाम से लोकप्रिय हिन्दी और मैथिली के प्रख्यात कवि और कथाकार नागार्जुन का पूरा नाम श्री वैद्यनाथ मिश्र। 1911 में इनका जन्म हुआ।

---

1. श्री रामजी पांडे - सुमित्रानंदन पंत व्यक्ति और कृतित्व से उधृत - पृष्ठ 25
2. रामधारी सिंह दिनकर - रश्मिरथी - पृष्ठ

नागार्जून जीवन और साहित्य दोनों ओरसे पीड़ित जन के पक्षधर रहे। उन्होंने साहित्यमें जब पदार्पण किया तब मार्क्सवाद का आग्रह अधिक था। लंदन में 1935 में प्रगतिशील लेखक संघकी स्थापना हो चुकी थी। तत्कालीन लेखकोंपर समाजवादी यथार्थवाद का आग्रह बढ़ता जा रहा था। नागार्जून जब स्वयं अभावग्रस्त, अर्थ पीड़ित व उच्चवर्ग द्वारा शोषित रहें।

नागार्जून गरीबों के हित के लिए सदैव संघर्षशील रहें। छपरा में खेतीहारों के आंदोलन में भाग लेनेसे उन्हें गिरफ्तार होना पड़ा। इसी तरह देहाती होने के कारण देहात की समस्याओं, कठिनाईयों से निकट का परिचय होने के कारण उनके प्रति सहानुभूति उत्पन्न हुई उनके सहायतामें सदैव आगे रहे।

सादे जीवन एवं परिवेश तथा प्रगतिशील विचारधारा ने नागार्जून के दृष्टिकोण को व्यापकता दी। सामान्यजन के प्रति पक्षधरता इनके संपूर्ण साहित्यमें व्यक्त हुई हैं।

नागार्जून की सबसे बड़ी विशेषता है कि, वे अनेक विविधताओं और संपन्नताओं के रचनाकार हैं। न केवल हिंदी बल्कि मैथिली, संस्कृत और पालिमें भी रचना करते रहे है और उन्हें अनेक भाषाएँ आती है।

नागार्जून की काव्यकृतियाँ - युगधारा, प्यासी पथराई आँखे, सतरंगे पंखेवाली, खून और शोले, हे देवी यह चुनाव का प्रहसन, खिचड़ी, विप्लव, भस्मांकूर खंडकाव्य हैं।

नागार्जून की कविता को समझने के लिए आलोचकोंने उसका वर्गीकरण किया है।

1. रागबोध की कविताएँ - इसमें प्राकृतिक सौंदर्य और वैयक्तिक जीवन की रागासक्ति को व्यक्त किया है।
2. लौटती कविताएँ
3. यथार्थपरक कविताएँ
4. राष्ट्रीयता के भाव कविता

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद तेलंगनामें किसान आंदोलन हुआ। नागार्जून ने धरती पूत्रों की चेतना का स्वागत किया। शोषकों द्वारा अपनायी गई दमन नीति का विरोध करते हुए इस नवशक्तिसे कंटकाकृत भूमि को निष्कंटक करने का आवाहन करते हैं -

BARR. BALASAHEB KHARDEKAR LIBRARY

'रुद्रता अनिवार्य होगी भद्रता के पूर्व
सर्वहारा वर्ग के नील लोहित फूल तुम बहुतेरा फलो
हे अपरिचित भूमिगत अज्ञातवासी
नाम गोत्र विहीन प्रिय, आजाद छापेमार टुकडी के बहादूर बंधु!
निष्कंटकर करो इस कंटकाकृत परिधि का करो तुम प्रस्तार
हे नव शक्ति।' 1

नागार्जुन इन क्रांतिकारियों का भी अभिनंदन करते हैं जो चुपचाप अपने काममें लगे हुए है, और मुक्ति का आवाहन करते है, शोषकों को चुनौती देते है। कवि कहता है -

मशीनोंपर और श्रमपर, उपज के सब साधनों पर
सर्वहारा स्वयं अपना करेगा अधिकार स्थापित
दूहकर वह प्रांत जौं को की मिटा देगा धरा की प्यास
करेगा आरंभ अपना स्वयं ही इतिहास।' 2

5. मुक्तिबोध -

प्रगतिवादी कविता के एक सशक्त और सक्षम हस्ताक्षर मुक्तिबोध का जन्म 13 नवंबर 1917 में ग्वालियरमें हुआ। इनकी रचनाएँ, तारसप्तक में संग्रहित है, चाँद का मुँह टेढा, कामायनी एक पुर्नविचार, भारतीय इतिहास और संस्कृति, नये साहित्य का सौंदर्यशास्त्र, नई कविता का आत्मसंघर्ष आदि वैचारिक साहित्य है।

मार्क्सवादी समीक्षा के संदर्भमें उनका मत था, मार्क्सवाद मनुष्यको कृत्रिम रुप से बौध्दिक नहीं बनाता हैं। वरन उसे ज्ञानलोकित आदर्श प्रदान करता हैं। समजा विकास का इतिहास, मार्क्स के अनुसार पाँच तरह की उत्पादन प्रणालियों से गुजर आया हैं। आदम-साम्य समाज, दाससमाज सामंती समाज, पूँजीवादी समाज, समाजवादी समजा आदि। मनुष्य अपने श्रमके द्वारा प्रकृति को प्रभावित, परिवर्तित करता है, स्वयं को विकसित करता हैं।

उपर्युक्त सिध्दांत के आधारपर मुक्तिबोध साहित्य कला को सामाजिक वस्तु मानते थे। उनका मत हैकि, चेतना के विकास के अपने गतिनियम है, जो सापेक्ष रुप से स्वतंत्र है। सामाजिक उत्पादन प्रणाली कार्य विभाजनके अनुसार विविध वर्ग तथा उनके जीवनयापन की विशेष प्रणालियाँ निधारित करती हैं।

---

1. डॉ. सत्यनारायण - नागार्जुन कवि और कथाकार से उधृत - पृष्ठ 41
2. डॉ. सत्यनारायण - नागार्जुन कवि और कथाकार से उधृत - पृष्ठ 11

साहित्य कला को मुक्तिबोध एक सांस्कृतिक प्रक्रिया समझते थे। और सांस्कृतिक मूल्यों को वर्ग या समाज की देन मूल्यों की गतिशीलता को भी वे स्वीकारते हैं।

उनकी कविता की विशेषता फैंटसी हैं। 'कला प्रक्रिया के सोपानों की चर्चा करते हुए उन्होंने कहा - कला का पहला क्षण है जीवन का उत्कट तीव्र अनुभव। दूसर अपने कसकते दुखते हुए मूलोंसे पृथक हो जाना और फैंटसी का रुप धारण कर लेना मानों वह फैंटसी अपनी आँखो के सामने ही खडी हो। तीसरा और अंतिम क्षण है इस फैंटसी के शब्दशब्द होने की प्रक्रिया का आरंभ और उस प्रक्रिया की परिपूर्णावस्था तक की गतिमानता।' 1

'तारसप्तक' में मुक्तिबोध की सत्रह कविताओं को जगह मिली हैं। इनमें अधिकांश कविताएँ छायावादी संस्कारों से स्पर्शित हैं। जिनमें छायावादी पदावली है, उनमें जो काव्य हैं वह प्रगतिशील भावबोध से संपर्कित हैं।

इसमें 'आत्मा के मित्र मेरे, मृत्यु और कवि, हे महान नाश देवता, आदि कविताएँ हैं। इन कविताओंमें शैल्पिक स्तरपर कवि छायावादी और कथ्य के स्तरपर प्रगतिशील दिखाई देता हैं।

'जो हृदय सागर द्रुमों लहरता
आनंद में व्याकुल चला आता
कि नीला गोल क्षण-क्षण गूँजता है
उस जलधि की श्याम लहरों पर जुडा आता
सघनतम श्वेत, स्वर्गिक फेन, चंचल फेन
जिसको नित लगाने निज मुखोंपर स्वप्न की
मृदु-मूर्ति-सी
अप्सराएँ साँस प्रातः
उतर आती कान्तिमय नवहास लेकर।' 2

6. शमशेर बहादुर सिंह -

सन 1932 ई. से काव्य के क्षेत्रमें प्रवेश करनेवाले शमशेर बहादुर पहली बार 'दूसरा सप्तक' में सहयोगी कवि के रुपमें संकलित किये गये। सन 1935 में उनका नया काव्यसंग्रह 'चुका भी हूँ नहीं

---

1. अरविंद पांडे - हिन्दी के प्रमुख कवि रचना और शिल्प - पृष्ठ 147
2. हरिचरण शर्मा - नये प्रतिनिधि कवि - पृष्ठ 170

मैं' उसमें उनका आंतरिक संघर्ष को प्रस्तुत करती हैं। उनकी रचनाएँ है किरण रेखा, शिला का खून पीती थी, किरण रेखा तिलक, सींग और नीखून, सीता आदि।

सुर्रियालिस्ट काव्यके प्रभाव से कवि जिस अंतर गुहामें प्रवेश कर गया था वहाँ से वह मार्क्सवाद का दामन थाम कर बाहर निकलता हैं।

दवा मेरे दिल की मिलानी हैं गुठाल
शब्द-भाव प्रेम वर्जित कर दिया गया है
मेरे जीवन में कितना
कि मैं अब समाजवादी बनूंगा
और समालोचक वक्ता आर्दपर
मेरी कला चीखेगी अपार व्योममें
अपनी अभिव्यक्ति के लिए।' ।

यह मार्क्सवादी चेतना का द्वंद्व को नये क्षेत्रमें पहुँचाती है, जहाँ व्यक्ति सर्वहारा के हित मोर्चेपर डटा हैं। व्यक्ति से बडा है समाज और व्यष्टि के बदले जहाँ समष्टि की आराधना की जाती हैं।

'उनके मिट्टी की तनमें हैं अधिक है अधिक ताप
उसमें, कवि हे अपने विरह मिलन के पाप जलाओं
काट बुजुआ भावोंकी गुमठी को गाओं।' 2

शक्ति केंद्रों और पूँजी के हाथ के खिलौने जैसे शोषित समाज को देखकर कवि की संवेदना ललकारने लगी थी। मार्क्सवादी चेतना से उन्होंने मानवता का मंगल ग्रहण कर लिया था।

शमशेर बहादूर सिंह एक संवेदनशील मानवतावादी, समन्वयमें विश्वास करनेवाले और मार्क्सवाद से प्रभावित कवि हैं।

अन्य कवियोंकी तरह शमशेर ने भी प्रकृति की आवाज सुनी हैं। और उसे अपना दिल और आवाज दिया। बरसात, बसंत, संध्या, रात, चाँदनी, आकाश, धूप आदि को उन्होंने अपने काव्यमें बाँधा हैं।

7. **भारत भूषण अग्रवाल -**

1919 में भारत भूषण अग्रवाल का जन्म मथुरामें हुआ। युवावस्था की रंगीनी और भावुकता संवेदनाशील व्यक्तिको कवि बना देती हैं। कवि के लिए कविता लिखना स्वप्न में अभिलाषापूर्ण करने जैसा कार्य रहा हैं। उन्होंने स्वीकार किया हैंकि, 'आर्थिक वैषम्य महत्त्वाकांक्षी बनाता है और वर्ग

---

1. अरविंद पांडे - हिंदी के प्रमुख कवि रचना और शिल्प - पृष्ठ 113
2. अरविंद पांडे - हिंदी के प्रमुख कवि रचना और शिल्प - पृष्ठ 113

ऐश्वर्य की शालीनता सहजरुप से नवयुवक को आकर्षित करती हैं। अतिभावुक रंगीन कवि और चिंतक बौध्दिक कवि बनता है। इससे स्पष्ट हो जाता हैकि, कवि के प्रमुख दो स्वर रहे हैं। पहला स्वर था स्वप्नों को सजाना और दूसरा स्वर था शोषण सत्ता से युध्द छेड़ देना। प्रथम स्वरके अंतर्गत प्रणय एवं प्रकृति से संबंधित रचनाएँ लिखी गई और दूसरे स्वर के अंतर्गत वर्ग-संघर्ष, शोषण तथा दारिद्रय के चित्रण के साथ जनक्रांति के लिये जन समाजको ललकारा गया।

कवि जनक्रांतिमें इस उम्मीद से शामिल होना चाहता है कि, तन और मनके सभी बंध टूट जायेंगे। वंचितों को उनका स्वत्व वापस मिल जायेगा। कवि अपनी इस बलिदानी भावना के पीछे जो आत्मगौरव की अभिलाषा थी उसे भी पहचानता हैं। कवि अपने आपको वर्गवादी हृदय के कटू व्यूहमें फँसा पाता हैं -

> 'उन परिस्थितियों का पिता है वर्ग और समाज पूँजी का
> और मेरे विकलमन की सभी सीमाएँ वही से निःसृत हुई है।' 1

कवि पूँजीवादी समाज के यथार्थता को समझता हैं। उसका विचार निश्चित रुपसे प्रगतिवादी विचारोंका प्रतिनिधित्व करता हैं।

कवि की भावना सामान्य जन को लू में झुलसते अनुभव करके सूरज की तरह धधक उठती है -

> 'जो तलमें नद सागर के कण कण का शोषण कर के
> तुझ पटरानी का करते हैं अभिषेक,
> रम्य रस वसना उस रमणी गण को।

कवि पूँजीवादियों को शोषितों के बलसे आगाह करता हैं -

> 'आज के मदिर सुख में, रंगीनी में भूली ओरी अलका
> कुछ तुझे ध्यान भी है कल का, शोषित बलके उठते बल का।'

उनकी रचनाओंसे यह प्रतित होता हैकि, समसामयिक चेतनाने उन्हें सदैव प्रेरित किया।

8. **केदारनाथ अग्रवाल -**

कवि केदारनाथ अग्रवाल प्रगतिवाद के उन कवियोंमें से एक हैं, जिससे जनकाव्य पोषित एवं समृध्दिशाली हुआ। केदारजीने अनुभूति की स्पष्टता स्वीकार करके विकृति को पास नहीं आने दिया। देशकी जनता और उसके जीवन की गहराई कवि ने अपना काव्य लिखा है।

---

1. डॉ. सुरेशचंद्र निर्मल - आधुनिक हिंदी काव्य और कवि - पृष्ठ 98

कवि ने स्वयं स्वीकार किया कि -

'कविताई न मैंने पाई न चुराई। इसे मैंने जीवन जोतकर किसान की तरह बोया और काटा हैं। यह मेरी है और अपने प्राणों से भी प्यारी हैं। किंतु मैंने उसे कोठे की बंदिनी बनाकर अपने अहं की चेरी के रुपमें नहीं रखा। मैंने कविता को सरिता के प्रवाह जैसी जनता तक पहुँचाया हैं। कविताने मुझे इस योग्य बनाया कि मैं जीवन निर्वाह के लिए उसी हदतक अर्थार्जन करुँ जिस हदतक आदमी बना रह सकता हूँ।' 1

कवि केदारने समाज और देशको आशा और उत्साह के स्वर में एक प्रगतिशील भविष्य समर्पित किया हैं।

हिंदी कविता की वर्तमान स्थितिसे कवि संतुष्ट है क्योंकि उसे विश्वास हैकि हिंदी साहित्यमें जो कुछ हो रहा हैं वह हिंदी के प्रसार की व्यापकता का परिणाम है। कवि अग्रवाल कवि के साथ ही मार्क्सवादी कार्यकर्ता भी हैं और राष्ट्रीय आंदोलनमें भी सक्रीय भाग लिया हैं।

केदारजी की अनेक रचनाएँ समय समय पर विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रही है। कविने लोकजीवन के उस स्वरुप को चित्रित किया है, जिसमें आदमी भूख की पीड़ामें पागल होकर कुत्ते सा प्रलाप करता है और उसी समाजमें धर्म के नामपर पापियों द्वारा धर्मकृत्य किये जाते हैं।

मैंने देखा है नग्न नृत्य, पापों से बोझिल धर्मकृत्य
भूखी आत्माओं का विलाप, पागल कुत्ते का सा प्रकाप।' 2

लोक और आलोक' में कवि का पौरुष नेतृत्व के लिए तैयार है, और देशवासियोंको आवाहन करता हैं -

'यदि मनुष्य हो
तो स्वदेश के अंग बनो तुम
खेत जोतकर अन्न उगाओ
रोटी खाओ और खिलाओ
वस्त्र और वस्तुएँ बनाओ
कंकरीट की सड़क बनाओ
आओ, जीवन का क्रम सुषम बनाओ
काम पडे तो लडो लड़ाई
चूको नहीं करो अगुआई।' 3

---

1. डॉ. दुर्गाप्रसाद झाला - प्रगतिशील हिंदी कविता से उधृत - पृष्ठ 75
2. डॉ. दुर्गाप्रसाद झाला - प्रगतिशील हिंदी कविता से उधृत - पृष्ठ 142
3. डॉ. दुर्गाप्रसाद झाला - प्रगतिशील हिंदी कविता से उधृत - पृष्ठ 142

कवि की यह लोकमंगल की भावना सीमित नहीं हैं। एक ओर नवीन चेतना को ग्रहण करने के लिए वह अनुरोध करता है, दूसरी ओर सामान्यजन को युग के चेतन की धूम मचाने के लिए प्रेरित करता हैं।

'गा सकते हो
तो अपने गीतों के द्वारा
युग के चेतन स्वर बन जाओ
गांव, नगर, घर, बनमें छाओ,
ढोल बजाओ
धूम मचाओ।' 1

इसप्रकार केदार ने लोकजीवन के प्रत्येक तत्वों को अपने काव्यमें स्थान दिया हैं।

9. **रांगेय राघव** -

रांगेय राघव ने प्रगतिवाद के एक समर्थ कवि के रुपमें अपने व्यापक दृष्टिकोण को प्रस्तुत किया। अपनी यथार्थपरक अनुभूति को सामाजिक उत्तरदायित्व की उत्कट इच्छामें जिस जागरुकता के साथ उन्होंने प्रस्तुत किया वह प्रगतिवाद की गौरवशाली कडी के रुपमें याद की जाती रहेगी।

व्यापक जनवादी भारतीय परंपरा को कविने अपनी कृतियों द्वारा विकसित किया हैं। अपनी कृतियोंमें राष्ट्रीय और आंतरराष्ट्रीय दोनों दायित्व के प्रति कवि सजग रहा हैं।

'अजेय खंड़हर' खंड काव्य उनकी प्रथम कृति हैं। कवि ने भारतीय स्वतंत्रता संग्राम को बल देने के लिए स्तालिनग्राद के युध्द को यथार्थ रुपमें चित्रित किया।

'जागो याद कर गतिमान
मेरे प्राण हिंदुस्थान
स्तालिनग्राद हिंदुस्थान।' 2

'पिघलते पत्थर' कवि की ऐसी रचना है जिसमें कविकी भावधारा खंड़काव्य की अपेक्षा व्यापक हैं। साम्राज्यवाद, फासिज्म, पूँजीवाद के विरोधमें कवि ने लोकजीवन को उद्बोधन काव्य दिया हैं। स्वतंत्रता का महत्व और उसकी मूल दृष्टि कवि मानवता के लिए आवश्यक समझता हैं।

मानवता के बारेमें कवि का मत हैं कि -

---

1. डॉ. दुर्गाप्रसाद झाला - प्रगतिशील हिंदी कविता से उधृत - पृष्ठ 142
2. डॉ. अजितसिंह - प्रगतिवादी काव्य उद्भव और विकास - पृष्ठ 138

अरि मानवता
बढ नवजात रुपासि बालिका यह
स्वच्छ स्निग्ध स्वतंत्रता।' 1

कवि का राष्ट्रीय स्वर इस कृतिमें अपने चरमोत्कर्षपर हैं।

रांगेय राघव प्रगतिवाद के उन कवियोंमें से हैं, जिन्हें धरती से लगाव हैं। जनता की कसक की अनुभूति हैं और लोकजीवन के प्रति प्रगाढ़ आस्था। अपने काव्यमें कवि ने युगीन समस्याओंको व्यक्त किया हैं। उनका काव्य लोकजीवन का ऐतिहासिक आख्यान हैं। जिसमें विपदाग्रस्त साम्राज्यवादी शोषण से त्रस्त, रुढियों से ग्रस्त लोकजीवन को पथ प्रदर्शन करता हैं।

रांगेय राघवने, साम्राज्यवाद और पूँजीवाद के खिलाफ, जो मानवता के अंतिम शत्रु है। कवि को विश्वास हैकि, मानवता और लोक जीवन अपने विकास क्रममें निरंतर गतिमान रहेंगे।

10. **शिवमंगल सिंह सुमन -**

शिवमंगल सिंह सुमन उस पीढी के कवि हैं, जिसका साथ प्रगतिशील आंदोलन से रहा हैं। सुमनजी प्रारंभसे ही अपने जनप्रिय गीतों और सुंदर कंठके कारण सर्वाधिक लोकप्रिय कवि रहें। हिल्लोल से लेकर आज तक का उनका सारा साहित्य प्रगतिवाद के अतिरिक्त वैभव के रुपमें स्वीकारा जा सकता हैं।

सुमनजी का प्रथम संग्रह 'हिल्लोल' हैं। इसमें कवि ने दलित व्यथा को व्यक्त किया हैं।

'विस्तृत पथ है मेरे आगे उसपर ही मुझको चलना है
चिर शोषित असहायों के संग,
अत्याचारों को दलना हैं।' 2

प्रगतिशील कवियों, लेखकों का लोकजीवन से सीधा संबंध है, इसलिए उसे जीवनकी सरलता, अनुभूति और भाषा को ग्रहण करना पड़ता हैं। सुमनजी प्रारंभसे ही इसके प्रति सजग रहे।

सुमन जी का प्रलयसृजन काव्यसंग्रह सदियों से दास्यत्व के जंजीरोंमें जकड़े भारतीयों को मुक्त कराने और मर मिटने की कवि की भावना उसके प्रगतिशील आवेश की सूचिका बनती हैं। इस संग्रह में उसके आत्मविश्वास का दर्शन होता है, जिसके सहारे वह क्रांतिका आवाहन करता हैं।

---

1. डॉ. अजितसिंह - प्रगतिवादी काव्य उद्भव और विकास - पृष्ठ 138
2. डॉ. सुमन - हिल्लोल - पृष्ठ 81

कवि ऐसा विश्वास करता है कि,

'मुर्दों में प्राण फूँकने को
मेरी वाणी विव्हल आतुर
पत्थर सी छाती के निर्झर
जिव्हा पर ताला हो अथवा
छातीपर वज्र प्रहार प्रबल
फिर भी है मेरा विश्वास अटल।' 1

कवि छोटे मोट आघातों की तनिक भी परवाह नहीं करता है। वह अपने नये पथ की ओर सदैव तत्पर है। मुड़कर देखना भी उसे पसंद नहीं है -

'मुड़कर नहीं देखते जीवन के
रस से संचलित निर्झर
झंझा की संदेशवाहिका वायु
नहीं रुकती है पथ पर
सुमनों की मधु गंध मलय वन
चल देती सौरभ बिखराने।' 2

सुमनजी की कृतित्व और उनकी प्रगतिवादी विशेषता काव्य और उसकी विशेषताओं और उनकी भाषा शिल्प का विस्तृत परिचय अगले अध्याय में देखेंगे।

इस अध्यायमें हमने प्रगतिवादी विचारधारा का समग्र विवेचन किया, प्रगतिवाद, विशेषता, साहित्यिक पृष्ठभूमी, मार्क्सवाद, भौतिकवाद, ऐतिहासिक वाद, नारी चित्रण, वर्गसंघर्ष, प्रगतिशील लेखक संघ अधिवेशन, प्रगतिवादी आंदोलन, मार्क्सवादी सिध्दांतोंका साहित्यमें प्रतिफलन और अंतमें प्रगतिवादी कवि और डॉ. शिवमंगल सिंह सुमन जी का अल्प परिचय हमने किया है, क्योंकि डॉ. सुमनके कृतित्व के बारेमें विस्तृत जानकारी हम आगे लेनेवाले हैं।

---

1. डॉ. शिवमंगल सिंह सुमन - प्रलयसृजन - पृष्ठ 84
2. डॉ. शिवमंगल सिंह सुमन - विश्वास बढ़ता ही गया - पृष्ठ 11-12